

\* ॐ श्रीपरमात्मने नमः \*

# कल्याण



वर्ष  
१२

S.N. Prasad

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या  
९

गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान



भगवान् गणेश

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्ण पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।  
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष  
१२

(गोरखपुर, सौर आश्विन, विं सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मितम्बर २०१८ ई०)

संख्या  
९

पूर्ण संख्या ११०२

## गणपति-स्तवन

नमामि देवं द्विरदाननं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम् ।  
धर्मार्थकामांस्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥  
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष ।  
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते ॥  
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय ।  
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम् ॥

मैं उन भगवान् गजानन गणेशजीको प्रणाम करता हूँ, जो लोगोंके सम्पूर्ण विघ्नोंका हरण करते हैं । जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामकी उपलब्धि कराते हैं, उन विघ्नविनाशकको नमस्कार है । हे कृपानिधान ! हे विश्वका विधान करनेमें दक्ष ! आप ब्रह्ममय, विश्वात्मा, विश्वके बीजरूप, जगन्मय, त्रैलोक्यका संहार करनेवाले हैं; हे देव ! आपको नमस्कार है । वेदत्रयीस्वरूप, अखिल बुद्धिदाता, बुद्धिप्रदीप, सुरेश्वर, नित्य, सत्य, नित्यबुद्ध, नित्य निष्काम आपको नित्य नमस्कार है । [ गणेशपुराण ]

हरे राम हरे राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥  
(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, सितम्बर २०१८ ई०

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गणपति-स्तवन	३	१४- आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन (पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)	२७
२- कल्याण	५	१५- सभीका ईश्वर एक [प्रेरक-प्रसंग]	३०
३- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान [आवरणचित्र-परिचय]	६	१६- संत-संस्मरण	
४- पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	(मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन ऋषिकेशमें हुए सत्संगसे)	३१
५- जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९	१७- गोपियोंके स्वर [कविता] (श्रीमती करुणा मिश्रा)	३१
६- साधनामें दैन्यभावका महत्व (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१४	१८- अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु (श्रीहरी मोहनजी)	३२
७- कर्मफल [बोधकथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी)	१६	१९- श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) [संत-चरित]	
८- कृतज्ञता (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	१७	(श्री 'मातृशरण')	३५
९- संतकी सहनशीलता [प्रेरक-प्रसंग]	२०	२०- अतिथेयी [गोभक्ति-कथा] (पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय)	३८
१०- केवल भगवान् ही अपने हैं [साधकोंके प्रति] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	२१	२१- श्रमका फल [प्रेरक-प्रसंग]	४२
११- अनपोल बोल	२२	२२- ब्रतोत्सव-पर्व [आश्विनमासके ब्रत-पर्व]	४३
१२- संत-वचनामृत (वृद्धावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	२३	२३- साधनोपयोगी पत्र	४४
१३- सात दिनका मेहमान [कहानी] (पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार')	२४	२४- कृपानुभूति	४६
		२५- पढ़ो, समझो और करो	४७
		२६- मनन करने योग्य	५०

## चित्र-सूची

१- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् गणेश	( ” )	मुख-पृष्ठ
३- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान	(इकरंगा)	६
४- बाण बनानेवालेकी एकाग्रता	( ” )	२३

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत-चित्-आनन्द भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail } वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)  
शुल्क } पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000) Us Cheque Collection  
Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : [gitapress.org](http://gitapress.org) | e-mail : [kalyan@gitapress.org](mailto:kalyan@gitapress.org) | 09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क [kalyan-gitapress.org](http://kalyan-gitapress.org) पर निःशुल्क पढ़ें।

## कल्याण

**याद रखो—**सच्ची शरणागति भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण हो जानेपर ही सिद्ध होती है, और सच्चा आत्मसमर्पण वह है, जिसमें अपने पास अपना कुछ रहे ही नहीं; शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, चेतना सभी कुछ श्रीभगवान्‌के हो जायँ।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह भगवान्‌के कार्यका आधार बन जाता है। उसके द्वारा फिर जो कुछ भी क्रिया होती है, सब भगवान्‌की ही होती है; उसका अपना अपने लिये पृथक् कुछ रहता ही नहीं।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह सदा सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक यन्त्रकी भाँति भगवान्‌का कार्य करता रहता है। वह किसी भी स्थितिमें प्रतिकूलताका अनुभव नहीं करता। उसकी प्रतिकूलता-अनुकूलता भगवान्‌की मंगलमयी इच्छामें मिलकर नित्य सम उल्लासमयी स्थितिके रूपमें परिणत हो जाती है।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह इस जगत्‌को दूसरे लोगोंकी भाँति जड़, अनित्य और दुःखपूर्ण नहीं देखता, उसकी आँखें बदल जाती हैं और वह इस चराचरात्मक समस्त जगत्‌को प्रतिक्षण शाश्वत चिदानन्दमय श्रीभगवान्‌के रूपमें देखता है एवं इसके प्रत्येक परिवर्तन और सृजन-संहारमें वह भगवान्‌की दिव्यलीलाका अनुभव करके आनन्दमग्न रहता है।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह नित्य परम शान्तिको प्राप्त करता है। अशान्ति या चित्तकी चंचलता तभीतक रहती है, जबतक चित्तमें जन्म-मृत्यु—जगत्‌के अनन्त अनित्य दृश्य भेरे रहते हैं, और जब चित्त भगवान्‌के चित्तमें

मिलकर घुल-मिल जाता है, तब वह नित्य शान्तिमय भगवान्‌का निवासस्थल बन जाता है। सागरके ऊपर-ऊपर ही तरंगें उछलती हैं, उसका गम्भीर अन्तस्तल अत्यन्त शान्त होता है, इसी प्रकार चित्त जबतक बाहरी जगत्‌में रमता है, तबतक उसकी चंचलता नहीं मिटती, पर वही जब अनन्त अथाह गहराईमें जाकर भगवान्‌को पा जाता है, तब सर्वथा शान्त स्थितिमें पहुँच जाता है।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—आनन्दका दिव्य और अटूट भण्डार बन जाता है। उसके द्वारा नित्य आनन्दका स्रोत बहता रहता है और वह जगत्‌के अनेकानेक त्रितापतप्त प्राणियोंको दिव्य शान्तिमयी आनन्दसुधाधारामें बहाकर उनके तापको सदाके लिये मिटा देता है।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—वह यदि कुछ भी नहीं करता, तब भी उसका जगत्‌में अस्तित्वमात्र ही जगत्‌के कल्याणमें बहुत बड़ा सहायक बनता है। और जो महापातकी लोग भी उसके सम्पर्कमें आ जाते हैं, उनका भी जीवन पलट जाता है। वे घोर नरकसे निकलकर दिव्य भगवद्वाममें पहुँच जाते हैं। और वे भी तरण-तारण बन जाते हैं।

**याद रखो—**जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—उसके लिये भगवान्‌का दिव्य धाम उत्तर आता है, वह नित्य भगवद्वाममें ही स्रोता-जागता, चलता-फिरता, खाता-पीता और सारी क्रियाएँ करता है। वह कभी भगवान्‌से अलग नहीं होता और भगवान्‌ कभी उससे अलग नहीं होते। उसके भीतर-बाहर सर्वत्र सदा भगवान्‌ ही भेरे रहते हैं।

‘शिव’

अवरणचित्र-परिचय—

## गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान



गयाधामका श्राद्धादिकर्म पितरोंके लिये अक्षयतृप्तिकारक तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है, इससे श्राद्धकर्ताका भी परम कल्याण होता है। यहाँ आदिदेव भगवान् गदाधर व्यक्त और अव्यक्त रूपका आश्रय ले पितरोंकी मुक्तिके लिये विष्णुपद आदिके रूपमें विद्यमान हैं। वहाँ जो दिव्य विष्णुपद है, वह दर्शनमात्रसे पापका नाश करनेवाला है। स्पर्श और पूजन करनेपर वह पितरोंको मोक्ष देनेवाला है। विष्णुपदमें पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य अपनी सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोक पहुँचा देता है। रुद्रपद अथवा शुभ ब्रह्मपदमें श्राद्ध करके पुरुष अपने ही साथ अपनी सौ पीढ़ियोंको शिवधाममें पहुँचा देता है। दक्षिणाग्निपदमें श्राद्ध करनेवाला वाजपेय-यज्ञका और गार्हपत्यपदमें श्राद्ध करनेवाला राजसूय-यज्ञका फल पाता है। चन्द्रपदमें श्राद्ध करके अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। सत्यपदमें श्राद्ध करनेसे ज्योतिष्ठोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। आवस्थ्यपदमें श्राद्ध करनेवाला चन्द्रलोकको जाता है और इन्द्रपदमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको इन्द्रलोक पहुँचा देता है। दूसरे-दूसरे देवताओंके जो पद

हैं, उनमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। उन सबमें काश्यपपद श्रेष्ठ है। विष्णुपद, रुद्रपद तथा ब्रह्मपदको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आरम्भ और समाप्तिके दिनमें इनमेंसे किसी एक पदपर श्राद्ध करना श्राद्धकर्ताके लिये भी श्रेयस्कर होता है।

नारदपुराणमें आया है कि भगवान् श्रीराम जब पितृतीर्थ गयाजीके रुद्रपदमें आकर पिता आदिको पिण्डदान करने लगे तो उसी समय पिता दशरथ स्वर्गसे हाथ फैलाये हुए वहाँ आये, किंतु श्रीरामजीने उनके हाथमें पिण्ड नहीं दिया। शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन न हो जाय, इसलिये उन्होंने रुद्रपदपर ही उस पिण्डको रखा। तब दशरथजीने कहा—‘पुत्र ! तुमने मुझे तार दिया। रुद्रपदपर पिण्ड देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोक जाओगे। तुम्हारे साथ अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोड़ेतक वैकुण्ठधाम जायँगे।’ श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ उत्तम रुद्रलोकको चले गये और श्रीरामजीने भी पिण्डदानकी प्रक्रिया पूर्णकर परम संतोष प्राप्त किया।

इसी प्रकार पूर्वकालमें भीष्मजीने विष्णुपदपर श्राद्ध करते समय अपने पितरोंका आवाहन करके विधिपूर्वक श्राद्ध किया और जब वे पिण्डदानके लिये उद्यत हुए, उस समय गयाशिरमें उनके पिता शन्तनुके दोनों हाथ सामने निकल आये, परंतु भीष्मजीने भूमिपर ही पिण्ड दिया; क्योंकि शास्त्रमें हाथपर पिण्ड देनेका अधिकार नहीं दिया गया है। भीष्मके इस व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर शन्तनु बोले—‘बेटा ! तुम शास्त्रीय सिद्धान्तपर दृढ़तापूर्वक डटे हुए हो, अतः त्रिकालदर्शी होओ और अन्तमें तुम्हें भगवान् विष्णुकी प्राप्ति हो; साथ ही जब तुम्हारी इच्छा हो, तभी मृत्यु तुम्हारा स्पर्श करे।’ ऐसा कहकर शन्तनु मुक्त हो गये।

## पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

यद्यपि पाप-पुण्यका विषय बहुत गम्भीर है तथा इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है, तथापि संक्षेपमें, साररूपसे यही कहा जा सकता है कि 'मानव-कर्तव्य ही पुण्य या सुकृत है और अकर्तव्य ही पाप या दुष्कृत है।'

पुण्य-पाप अथवा कर्तव्य-अकर्तव्यके निर्णयमें शास्त्र (धर्मग्रन्थ) ही प्रमाण हैं, इसीलिये गीता (१६। २४)-में श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि—  
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥**

'अतएव तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तुझे शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्म ही करना चाहिये।' परंतु जिस मनुष्यका ईश्वर और शास्त्रमें विश्वास नहीं है, शास्त्रकी व्यवस्था न माननेपर भी उसके लिये भी मानव-कर्तव्य ही पुण्य है और अकर्तव्य ही पाप है। अब यह प्रश्न आता है कि शास्त्रको न माननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय किस प्रकार करे? इसका उत्तर यह है कि उसे प्राचीन और वर्तमान महापुरुषोंके किये हुए निर्णय और आचरणको प्रमाण मानकर अपने कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना चाहिये। इसपर यदि कहा जाय कि किसीकी दृष्टिमें कोई महापुरुष हैं और किसीकी दृष्टिमें कोई और उन महापुरुषोंमें भी मतभेद है, ऐसी स्थितिमें वह क्या करे? तो इसका उत्तर यह है कि जिसकी दृष्टिमें जो महापुरुष हैं, उसको उन्हींका आचरण और निर्णय मानना चाहिये। इसपर यदि यह कहा जाय कि तब तो माननेवालेकी बुद्धि ही प्रधान रही, सो ठीक ही है; जो धर्मशास्त्र और ईश्वरको नहीं मानते, उन्हें तो अपनी ही बुद्धिपर निर्भर रहना पड़ेगा। अपनी बुद्धिके निर्णय में भूल हो सकती है, इसीलिये महापुरुषोंने शास्त्रप्रमाण माननेके लिये कहा है। शास्त्रको प्रमाण न माननेवालोंको किसी महापुरुषके वचन प्रमाणरूप मानने पड़ेंगे और यदि किसी महापुरुषपर भी विश्वास न हो तो उन्हें अपनी बुद्धिका ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। अतएव ऐसे पुरुषोंको अपनी बुद्धिसे

किये हुए निश्चयके अनुसार ही कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्था करनी पड़ती है।

अब यह बात बुद्धिसे सोचनी चाहिये कि मनुष्यके लिये वस्तुतः कर्तव्य और अकर्तव्य क्या हो सकता है? इस प्रकारसे सोचनेकी बुद्धि मनुष्यमें ही है, पशु-पक्षी आदि अन्यान्य जीवोंमें नहीं। इसलिये यह बात मनुष्यपर ही लागू होती है। जो मनुष्यका शरीर प्राप्त करके कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्य करता है, वह मनुष्यत्वसे गिर जाता है; वास्तवमें ऐसा मनुष्य मानवशरीरमें भी पशुके ही तुल्य है।

संसारमें दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं—(१) चेतन और (२) जड़। जो द्रष्टा है, वह चेतन है और जो दृश्य है, वह जड़ है। द्रष्टा भोक्ता है, दृश्य भोज्य है। द्रष्टाके ही लिये दृश्य है। त्याग-बुद्धिसे ज्ञानपूर्वक दृश्यका उपभोग करनेमें मुक्ति है अर्थात् इस चेतनका दुःख और पापोंसे मुक्त होकर परम आनन्द तथा परम शान्तिमें निवास है। बिना समझके उपभोगसे बन्धन, पतन, अशान्ति और दुःख है।

अतएव जो कर्म अपने या किसी भी अन्य चेतन जीवके लिये इस लोक और परलोकमें वस्तुतः लाभजनक है, वही कर्तव्य है और जिससे अपना या अन्य किसी जीवका इहलोक और परलोकमें अहित होता है, वही अकर्तव्य है। इसी कर्तव्य-अकर्तव्यको विधेय-निषेध्य, शुभ-अशुभ, कार्य-अकार्य या पुण्य-पाप कहा जा सकता है।

इसी प्रकार इस लोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले सुखके साधनरूप जो जड़ पदार्थ हैं, उनकी भी बुद्धिका यत्न करना पुण्य और क्षयका प्रयत्न पाप है। यही पुण्य-पापका संक्षिप्त विवेचन है।

किसी प्रकारसे किसीको दुःख पहुँचाना ही पाप है। अपने शरीरका उदाहरण सामने रखकर इसपर विचार करना चाहिये। विवेकशील मनुष्य दूसरोंके प्रति ऐसा कभी कुछ नहीं करता, जिसे वह अपने लिये अवांछनीय समझता हो। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि चोट लगनेपर या मारनेपर जैसी पीड़ा हमलोगोंको

होती है, वैसी ही पशु-पक्षियोंको होती है। मारनेके समय उनके रुदन, विलाप और छुड़ानेकी चेष्टासे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। फिर अपने शरीर-पोषणके लिये या स्वादके लिये दूसरे जीवोंको जानसे मार डालना तो किसी प्रकार भी मनुष्यत्व नहीं कहला सकता!

पशु-पक्षी आदिको मारकर उनका मांसाहार करनेमें उनका या अपना किसी प्रकार हित भी नहीं है; वे तो प्रत्यक्ष पीड़ित होते और मरते ही हैं, परंतु मांसाहारीकी भी बड़ी क्षति होती है। मांसाहारसे मनुष्यका स्वभाव क्रूर और तामसी हो जाता है। दया उसके हृदयसे चली जाती है। वह जिनका मांस खाता है, उन जीवोंके रोग और दुष्ट स्वभावके परमाणुके भीतर आ जानेसे नाना प्रकारकी शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ हो जाती हैं; पाप तो होता ही है। मनुष्यके मुखकी आकृति और उसके दाँतों तथा दाढ़ोंको देखनेसे इस बातका भी प्रत्यक्ष पता लगता है कि मांस मनुष्यका आहार भी नहीं है। जो जिसका आहार नहीं है, वह उसके लिये अखाद्य और स्वास्थ्यनाशक है। दुर्गन्धके कारण भी मांस अखाद्य है, फिर यह ऐसा आवश्यक भी नहीं है कि इसके बिना जीवन न चले। इसके अतिरिक्त अधिकार भी नहीं है। किसी भी जीवको सहायता देने, बढ़ाने और उसके जीवन-धारणमें सहायक होनेका ही अधिकार है, मारनेका नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि ईश्वरने मनुष्यको सम्पूर्ण चराचरके रक्षणके लिये उत्पन्न किया है, भक्षणके लिये नहीं; यह बात इसकी विद्या, बुद्धि, आकृति और योग्यतासे भी सिद्ध होती है। यह भी विचार करना चाहिये कि मांसाहारीको मांसाहारसे क्षणिक सुख मिलता है और थोड़े-से कालके लिये उसका निर्वाह होता है, परंतु उस प्राणीका तो सदाके लिये सर्वनाश ही हो जाता है! इन सब बातोंपर विचार करनेसे कोई भी समझदार मनुष्य मांसाहारको न तो पुण्य बतला सकता है और न यही कह सकता है कि यह पाप नहीं है। यह तो एक प्रकारका अत्याचार है। पशु-पक्षियोंमें हम देखते हैं कि बलवान् पशु-पक्षी निर्बल जीवोंको मारते हैं। मनुष्य बुद्धिमान् होनेके कारण सबसे बलवान् है, अतः वह यदि अपने छल, बल और कौशलसे निरीह, निर्बल, मूक पशुओंको मारता है तो यह उसका मानवदेहमें ही पशुपन है। पशुमें तो

कर्तव्याकर्तव्यकी बुद्धि नहीं है, इसलिये हम कह सकते हैं कि उनके लिये यह पाप नहीं होता; परंतु मनुष्यको तो यह बुद्धि प्राप्त है; अतएव वह यदि दूसरे जीवोंको मारकर या उन्हें मरवाकर मांसाहार करता है तो वह पशुसे भी गया-गुजरा है। पशु-पक्षी ही नहीं, अपितु गम्भीर विचार करनेपर ज्ञात होगा कि सजीव हरे वृक्ष और ब्रीहि आदिके छेदनमें भी किसी अंशमें हिंसा है, परंतु संसारमें कोई भी आरम्भ (कार्य) निर्देष नहीं होता और मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहके लिये इनका उपयोग करना ही पड़ता है। मनुष्यकी आकृतिसे भी पता लगता है कि यह फल, ब्रीहि इत्यादि ही उसका खाद्य है; तथापि जहाँतक हो सके इनका उपयोग भी आवश्यकतानुसार कम-से-कम ही करना चाहिये। अनावश्यक फल-मूल-वृक्षादिका छेदन कदापि नहीं करना चाहिये। फिर वृक्षोंका तो उनकी उन्नति या बुद्धिके लिये भी छेदन किया जा सकता है; कलम करनेसे पेड़ बढ़ते हैं, फलोंसे बीज होते हैं और उन बीजोंसे पुनः वृक्षोंकी वृद्धि होती है; परंतु मांसाहारमें तो केवल क्षय-ही-क्षय है, अतएव मांसाहार सर्वथा पाप और त्याज्य है।

संसारमें जितने जड पदार्थ हैं, वे सभी किसी-न-किसी रूपमें चेतनोंके लिये ही हैं, परंतु उनको भी व्यर्थ नुकसान पहुँचाना पाप है, फिर चेतन प्राणियोंका शरीरवियोग करना पाप है, इसमें तो कहना ही क्या है?

जिस मनुष्यका जन्म और पालन-पोषण मांसाहारी कुल और वातावरणमें हुआ है तथा लड़कपनसे जिसका वैसा स्वभाव है, उसके लिये भी मांसाहार सर्वथा त्याज्य है। मनुष्यको विवेककी बड़ी सम्पत्ति प्राप्त है, जब उसको यह समझ आ जाय कि दूसरोंके द्वारा पीड़ा पहुँचानेपर या मारनेपर मुझे दुःख होता है, तभीसे उसको यह सोचना चाहिये कि जैसा दुःख मुझको होता है, ऐसा ही दूसरे प्राणियोंको भी होता है और दूसरे प्राणियोंके मरने-मारनेके समय होनेवाले भयंकर कष्टको मांसाहारी देखता-सुनता भी है। ऐसी दशामें मनुष्य होनेके कारण उसके लिये मांसाहार करना पाप ही है और उसे मांसाहारको पाप समझकर तुरंत ही त्याग देना चाहिये। मांसाहार मनुष्यके लिये अत्यन्त जघन्य कर्म है। मांसाहार कभी नहीं करना चाहिये।

# जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै!

( श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट )

बात है इसी नागपंचमीकी।

दोपहरको भोजन करके लेटा ही था कि कमरेमें धम्मसे आवाज हुई। देखा, ऊपर दीवालके मुक्केसे बिल्ली कूदी।

और यह क्या?

उसके मुँहमें दबा था एक कबूतर!

कुछ देर पहले कबूतरोंकी इधर-से-उधर भाग-दौड़ मैंने देखी थी। सोचा था कि वे आपसमें विनोद कर रहे हैं। मुझे क्या पता था कि मौतको सिरपर मँडराते देखकर वे जीवनके लिये दौड़ादौड़ी मचाये हुए हैं। बिल्लीके पीछे दौड़ा कि वह कबूतरको छोड़ दे, पर वह भला क्यों छोड़ने लगी?

वह छतपर भागी। इधर-उधर खूनके धब्बे पड़े थे, रास्तेमें।

ऊपरकी भण्डरियामें कबूतरको पंख फड़फड़ाते सुनकर बिल्लीको ललकारा तो वह उसे छोड़कर नीचे भागी।

जाकर देखा तो बेचारा कबूतर शान्त हो चुका था! बाबा कबीरदास मानो कानमें आकर गुनगुनाने लगे— मीचु बिलइया खैहे रे।

ऐशो इहु संसार पेखना, रहन न कोऊ पइहै रे।

सूधे सूधे रेंग चलहु तुम नतरु कुधका दिवझै रे।

बारे बूढ़े तरुने भड़आ सभू हु जम लै जझै रे।

मानुस बपुरा मूसा कीनो, मीचु बिलइया खैहे रे॥

धनवंता अस निरधन मनई ताकी कछू न कानी रे।

राजा परजा सभ करि मारै ऐसो कालु बडानी रे॥

जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु!

संसारमें और सब अनिश्चित है, निश्चित है केवल एक मृत्यु।

कहावत भी है कि 'इट इज ऐज शयोर ऐज डेथ।' 'मृत्युकी भाँति निश्चित।'

रूप राशि पर गर्व न करना ओ फूलों की रानी।

समय रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी॥

लाखका घर पलभरमें खाक हो जाता है। बनेबनाये महल आनन-फानन जमीनमें लोटने लगते हैं। रूप-राशि, धन और यौवन, पद और सम्मान—सब कुछ देखते-देखते स्वाहा हो जाता है। पर वाह रे, कारीगर! धन्य है तेरी कला! तेरा चक्कर अद्भुत है। आदमी इसी गोरखधन्धेमें फँसा इसी मायाजालमें ढूबता-उतराता रहता है।

हम जाने थे खायेंगे, बहुत जर्मीं बहु माल।

ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकड़ ले गया काल॥

कालदेव आते हैं और पलभरमें हमारी मुश्कें बाँधकर चल देते हैं। न उनके आनेकी घड़ी निश्चित, न उनके आनेका बहाना निश्चित।

कभी रोग है तो कभी बीमारी। कभी आग है तो कभी तूफान। कभी महामारी है तो कभी और कुछ। कभी साँपके रूपमें वे काट खाते हैं तो कभी सिंहके रूपमें फाड़ खाते हैं।

कालदेवको न रहम है, न दया। घड़ीकी सुई ठिकानेपर पहुँची नहीं कि बस, उन्होंने अपना फन्दा कसा। रहिये आप बड़े बहादुर, रहिये आप बड़े शूरवीर, रहिये आप लखपती-करोड़पती—उनके आगे आपकी दाल नहीं गल सकती। डॉक्टर और वैद्य, हकीम और तबीब, सुझायाँ और गोलियाँ—सब बेकार रहती हैं, बिलकुल बेकार। तभी तो—

आस पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल।

मङ्ग महलसे ले चला ऐसा काल कराल॥

भूलोकका सर्वोच्च अधिकारी है—यमराज। उसके आगे किसीकी दाल नहीं गल पाती!

×                    ×                    ×

सोचनेकी बात है कि कैसा होता है वह दिन— जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहै।

घर के कहैं बोंगी ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहै॥

जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डैरहै॥

.....



तोड़ते देखा है। उनकी शवयात्राके साथ श्मशान जानेके जीवनमें अनेक मौके आये हैं। कभी हितू-मित्रोंकी, सगे-सम्बन्धियोंकी, परिचितोंकी शवयात्राके साथ गया हूँ, तो कभी यों ही मणिकणिकाका दृश्य देखने चला गया हूँ। रास्तेमें पिण्डदान करते समय पुरोहित कहता है—‘श्मशान-मार्गमें यह पिण्ड दिया जा रहा है।’ सोचता हूँ शवकी यात्रा तो सभी राजपथोंसे होती है, तो जिधर देखिये उधर श्मशान-मार्ग ही तो है!

और श्मशानमें देखिये—

कहीं किसीकी चिता लगायी जा रही है, कहीं किसीके बच्चेका जलप्रवाह किया जा रहा है। कहीं चिता सुलग रही है, कहीं चिता धधक रही है। कभी-कभी तो १०-१०, १५-१५ चिताएँ एक साथ धधकती हैं। कहीं हड्डियाँ पड़ी हैं, कहीं खोपड़ी। कहीं कौए हैं, कहीं गीध हैं, कहीं कुत्ते हैं—लाशोंको नोच रहे हैं। सगे-सम्बन्धी बिलखते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं।

जगत्की नश्वरता, क्षण-भंगुरताका यह सारा दृश्य देखकर जी भर आता है। आँखें भर आती हैं। कभी-कभी फूट-फूटकर रोनेको भी जी जी मचलने लगता है।

परंतु ? कितनी देर टिकता है यह श्मशान-वैराग्य ?

घाटपर ही मन तरह-तरहके सञ्जबाग दिखाने लगता है—‘अरे मूर्ख, जो गया सो गया। मौत आयेगी, तब देखा जायगा। अभीसे उसकी चिन्ता क्यों करता है ? जीवन तेरे सामने है। जीवनके नाना प्रकारके भोग तेरे सामने हैं। उनका मजा ले। दुनियाके बागकी बहार लूट। यह बहार चन्दरोजा है तो भी क्या ? सुख क्षणिक है तो भी क्या ?’

मनकी ये लंतरानियाँ श्मशानघाटपर भी अपनी रौनक दिखाती हैं। जीवनके परम सत्यको देखकर भी हम उससे आँखें मूँद लेते हैं। प्रेयके चक्करमें पड़कर श्रेयको सर्वथा भुला बैठते हैं।

हमारी भोगासक्ति यहींतक नहीं रुकती। हम ‘मौत’ का नामतक लेना नहीं पसन्द करते। मौतके नामसे डरते हैं!

किसी शवको सड़कपर जाते देख माताएँ अपने

बच्चोंको ढक लेती हैं—कहीं उनपर मृत्युकी छाया न पड़ जाय।

कैसा प्रबल चक्र है मोह और ममताका !

×                    ×                    ×

पर, चाहे जितनी पेशबन्दी करिये, मौतके नामको भी कानोंमें मत पड़ने दीजिये, पर मौत कभी पीछा छोड़नेवाली है नहीं।

कहते हैं कि लकड़ीका बोझा ढोनेवाला एक बूढ़ा एक दिन थककर बोल पड़ा—‘क्या बताऊँ, मौत भी तो नहीं आती।’ और तभी सचमुच मौत सामने आ खड़ी हुई।

बोली—‘बाबा, क्यों याद किया है मुझे ?’

‘कौन है तू ?’—बूढ़ेने पूछा।

‘मैं हूँ मौत।’

बूढ़ा बैचारा सन्न रह गया।

पर दूसरे ही क्षण बोल उठा—‘मैंने तुझे इसलिये थोड़े ही बुलाया था कि तू मुझे यमराजके घर ले चल। मैंने तो इसलिये बुलाया कि जरा मेरे बोझेमें हाथ लगाकर इसे मेरे सिरपर रख दे।’

हम इसी तरहकी बातें करके मौतको बहला देना चाहते हैं, पर वह भला हमारे ऐसे चक्कमोंमें कभी आनेवाली है ? तभी तो कबीरदास ठोक-ठोककर चेतावनी देते हैं—

जिअरा तुम जैहौ हम जानी।

राज करंते राजा जैहैं रूप धरंती रानी॥

राज समान सभासद जैहैं, जैहैं सब अभिमानी॥

बेद पढ़ंते पंडित जैहैं, कथा सुनंते ध्यानी॥

जोग करंते जोगी जैहैं, ज्ञान रटंते ज्ञानी॥

चंदा जैहैं, सूरज जैहैं, जैहैं पवन अरु पानी॥

मन औं बुद्धी दोनों जैहैं, जैहैं सकल परानी॥

जोगी जैहैं, जंगम जैहैं, जैहैं जन धन मानी॥

कहैं ‘कबीर’ हरिजन ना जैहैं, जिनकी मति ठहरानी॥

मतलब ?

जाना सबको है। जिसने भी शरीर धारण किया है, उसे जाना है।

तब बचेगा कौन ?

बचेंगे वही—‘जिनकी मति ठहरानी ।’

—जिनकी बुद्धि स्थिर है, जिनकी प्रज्ञा स्थिर है, जो स्थितप्रज्ञ हैं—केवल वे ही बचेंगे। शरीर तो उनका भी जायगा, पर वे मरेंगे नहीं। जन्म और मृत्युका बन्धन उन्हें बाँध नहीं सकेगा। उन्हें कष्ट नहीं दे सकेगा, व्यथित और पीड़ित नहीं कर सकेगा।

मौतसे बचनेका एकमात्र उपाय है—मृत्युके रहस्यको समझ लेना। जो अनिवार्य है, उसका सामना करना ही है। तो क्यों न हम हँसते-हँसते उसका स्वागत करें ?

मौत इक बार जो आना है तो डरना क्या है ?

हम सदा खेल ही समझा कि ये मरना क्या है ?

बुद्धिको स्थिर रखनेका हम अभ्यास करें तो मौत भी हमारे लिये एक खेलकी वस्तु बन जायगी।

महात्मा गाँधीसे लोग समय-समयपर मृत्युके विषयमें पूछते रहते थे। उनके उत्तरोंसे हम सब प्रेरणा ले सकते हैं—

१—‘हम ईश्वरको पहचानते हैं तो मृत्युमें आनन्द मानना सीखना ही चाहिये।’

(पत्र राजाजीको, २६—७—१९३२)

२—‘मैं मृत्युको भयानक चीज नहीं समझता। विवाह भयानक हो सकता है, मृत्यु कभी नहीं।’

चांदा, १४—११—३३ (बापूके पत्र मणिबहन पटेलके नाम)।

३—‘ईश्वरके कालरूपका मनन करनेसे और उसके मुखमें सृष्टिमात्रको जाना है। प्रतिक्षण कालका यह काम चलता ही रहता है—इसका भान हो जानेसे, सर्वार्पण और जीवमात्रके साथ ऐक्य अनायास हो जाता है। चाहे-अनचाहे इसके मुखमें हम अकलिप्त क्षण पड़नेवाले हैं। वहाँ छोटे-बड़ेका, नीच-ऊँचका, स्त्री-पुरुषका, मनुष्य-मनुष्येतरका भेद नहीं रहता। कालेश्वरके एक कौर हैं—यह जानकर हम क्यों दीन शून्यवत् न बनें ? क्यों सबके साथ मैत्री न करें ? ऐसा करनेवालेको यह काल-स्वरूप भयंकर नहीं, बल्कि शान्तिस्थल लगेगा।’ (गीताबोध)

४—‘जो मृत्यु चाहे जब छोटे-बड़े, गोरे-काले,

मनुष्य-पशु या दूसरे सबके लिये आती ही है, उसका डर क्या ? और उसका शोक भी क्या ? मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि जन्मकी अपेक्षा मृत्यु अधिक अच्छी चीज होनी चाहिये। जन्मसे पहले नौ महीने यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और जन्मके बाद भी अनेक दुःख हैं, जबकि कुछको मृत्युके अवसरपर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकारकी मृत्यु प्राप्त करनेके लिये जीवन अनासक्तियुक्त कामोंमें बीतना चाहिये।’

(पत्र सेठ जमनालाल बजाजको, ८-११-३२)

५—‘मृत्युके भयको दूर करनेके लिये मनोविकारोंको नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये और प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वे दूर हो जायँगे। नहीं तो, वह बात चरितार्थ होगी कि बन्दरका स्मरण न करनेके प्रयत्नमें उसका ख्याल बना ही रहा।’

(केपटाउन ७-३-१४, पत्र रावजी भाई पटेलको)

६—‘जन्म और मृत्यु—दोनों ही महान् रहस्य हैं। यदि मृत्यु दूसरे जीवनकी पूर्व-स्थिति नहीं है तो बीचका समय एक निर्दय उपहास है। हमें यह कला सीखनी चाहिये कि मृत्यु किसीकी और कभी भी हो, हम उसपर हर्षिज रंज न करें। मेरे खयालमें ऐसा तभी होगा जब हम सचमुच ही अपनी मृत्युके प्रति उदासीन होना सीखेंगे और यह उदासीनता तब आयेगी, जब हमें हर-क्षण यह भान होगा कि हमें जो काम सौंपा गया है, उसे हम कर रहे हैं। लेकिन यह कार्य हमें कैसे मालूम होगा ? वह ईश्वरकी इच्छाको जाननेसे मालूम होगा। ईश्वरकी इच्छाका पता चलेगा—प्रार्थना और सदाचरणसे।’

(बापूके पत्र मीराके नाम)

७—‘यह बात गीतामें ही मिलती है कि मृत्युके लिये शोक नहीं करना चाहिये।’

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

(२। १६)

इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है। अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर

‘असत्’ है। ‘असत्’ का अर्थ ‘माया’ नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो; बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान्, परिवर्तनशील। फिर भी हम अपने जीवनका सारा व्यवहार यह मानकर चलाते हैं, मानो हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीरको पूजते हैं, शरीरके पीछे पढ़े रहते हैं। यह सब हिन्दूधर्मके विरुद्ध है। हिन्दूधर्ममें यदि कोई बात चाँदनीकी तरह स्पष्ट कही गयी है तो वह है—‘शरीर और दृश्य पदार्थोंकी असत्।’ फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं, रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई करते हों।

महाभारतमें तो यह कहा गया है कि रुदनसे मृत आत्माको संताप होता है और गीता इसीलिये लिखी गयी है कि लोग मृत्युको कोई भी भीषण वस्तु न मानें। मनुष्यका शरीर काम करते-करते थक जाता है। अनेक शरीर तो मृत्युके द्वारा दुःखसे मुक्त होते हैं। गीता हमें सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठको समझता जा रहा हूँ कि अशाश्वत वस्तुके लिये की गयी सारी चिन्ता व्यर्थ है, व्यर्थ कालक्षेप है।

‘असत्का भाव’—इसका अर्थ है—अस्तित्वका न होना और जो सत् है, उसका नाश कभी नहीं हो सकता।

गीता इस श्लोकमें पुकार-पुकारकर कहती है कि हम अपने जीवनमें सत्यको धारण करके जियें और माया, असत्य, पाखण्डका त्याग करें। अनेक बार वाणी असत्य हो जाती है, पाखण्ड-रूप हो जाती है। क्रोध असत् है। काम, मोह, मद आदि असत् हैं। हमें इन तमाम सर्पोंका सत्र करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा केवल शरीरको कष्ट देता है, पर ये सर्प तो हमारी रग-रगमें पहुँच जाते हैं और हमारी आत्माको भी हानि पहुँचानेकी धमकी देते हैं। परंतु आत्माको हानि नहीं पहुँच सकती। वह अविनाशी है। यदि हम इस बातको समझ लें कि सत् क्या है तो जन्म-मृत्युका रहस्य भी समझ जायेंगे।

जिस प्रकार रसायनशास्त्री कहते हैं कि जब

मोमबत्ती जलती है, तब उसकी किसी वस्तुका नाश नहीं होता; उसी प्रकार जब शरीर मरता है और जलता है, तब कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। जन्म और मृत्यु एक ही वस्तुकी दो स्थितियाँ हैं। किसी स्वजनके मरणपर हम जो रोते-चीखते हैं, उसका कारण है—स्वार्थ।’

(हिं० नवजीवन ३०-७-३५)

बापूके इन अनमोल उपदेशोंको हम हृदयमें धारण कर लें तो हमारा बेड़ा पार हो जायगा। सच बात तो यह है कि हमारी बुद्धि स्थिर हो; मोह और ममता, राग और द्वेषके चक्करसे हम अपनेको मुक्त कर लें; फिर तो मौतका सारा डर ही दूर हो जायगा।

और वह दूर हुआ कि हमारा सारा जीवन ही पवित्र और आनन्दमय बन जायगा; साथ-ही-साथ मृत्यु भी।

दूसरी दृष्टिसे सोचें तो मृत्युका भय यदि वस्तुतः हमें आक्रान्त कर ले, तब भी काम बन सकता है। फिर तो हमें सच्चे वैराग्यकी प्राप्ति हो जायगी। ‘मौत सिरपर लटक रही है’—इतना विश्वास दृढ़ हो जाय तो फिर हमसे कोई गलत काम होगा ही कैसे? कोई पाप हमसे बनेगा ही कैसे? किसीको हम सतायेंगे ही कैसे, जब कि हम जानते हैं कि पता नहीं कलका सूर्योदय हम देख सकेंगे भी या नहीं।

पर इस भयको हम आँख मूँदकर टाल देते हैं; किंतु हम लाख टालें, वह टलनेवाला है नहीं। तब बुद्धिमानी इसीमें है कि हम जीवनके रहे-सहे क्षणोंको जीवनके एकमात्र चरम लक्ष्य प्रभुप्राप्तिके लिये ही प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर दें। हम जो कुछ करें, सो सब प्रभु-पूजा ही हो। प्रभुसे हमारी एक ही प्रार्थना हो कि ‘नाथ! जीवनकी अन्तिम बेलामें तुम ही मेरे समक्ष हो’—

इतना तो करना भगवन्, जब प्रान तनसे निकलें।

श्री जमुनाजी का तट हो अरु पास वंशीवट हो॥

वह साँवला निकट हो, जब प्रान तन से निकलें।

फिर तो धन्य और पवित्र हो जायगा हमारा जीवन और धन्य तथा पवित्र हो जायगा हमारी मृत्यु!

## साधनामें दैन्यभावका महत्त्व

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोहार )

साधकोंके लिये एक बहुत उत्तम उपाय है— परमेश्वरके सामने आर्त होकर दीनभावसे हृदय खोलकर रोना। यह साधन एकान्तमें करनेका है। सबके सामने करनेसे लोगोंमें उद्गेग होने और साधनके दम्भरूपमें परिणत हो जानेकी आशंका रहती है। प्रातःकाल, सन्ध्या-समय, रातको, मध्यरात्रिके बाद या उषाकालमें जब सर्वथा एकान्त मिले, तभी आसनपर बैठकर मनमें यह भावना करनी चाहिये कि ‘भगवान् यहाँ मेरे सामने उपस्थित हैं, मेरी प्रत्येक बातको सुन रहे हैं और मुझे देख भी रहे हैं।’ यह बात सिद्धान्तमें भी सर्वथा सत्य है कि भगवान् हर समय हर जगह हमारे सभी कामोंको देखते और हमारी प्रत्येक बातको सुनते हैं। भावना बहुत दृढ़ होनेपर, भगवान्का जो स्वरूप इष्ट हो, वह स्वरूप साकार रूपमें सामने दीखने लगता है एवं प्रेमकी वृद्धि होनेपर तो भगवत्कृपासे भगवान्के साक्षात् दर्शन भी हो सकते हैं। अस्तु !

नियत समय और यथासाध्य नियत स्थानमें प्रतिदिन नित्यकी भाँति किसी आसन या पृथ्वीपर बैठकर भगवान्को अपने सामने उपस्थित समझकर दिनभरके पापोंका स्मरणकर उनके सामने अपना सारा दोष रखना चाहिये और महान् पश्चात्ताप करते हुए आर्तभावसे क्षमा तथा फिर पाप न बने, इसके लिये बलकी भिक्षा माँगनी चाहिये। हो सके तो भक्तश्रेष्ठ श्रीसूरदासजीका यह पद गाना चाहिये या इस भावसे अपनी भाषामें सच्चे हृदयसे विनय करनी चाहिये।

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी॥  
जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नेन-हरामी॥  
भरि भरि उदर बिंधैं कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी॥  
सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि सँग बिसरामी॥  
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी॥  
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी॥  
सूरदास प्रभु अधम-उधारन, सुनियै श्रीपति स्वामी॥

(सूरसागर ४८)

हे दीनबन्धो! यह पापी आपके चरणोंको छोड़कर

और कहाँ जाय? आप-सरीखे अनाथनाथके सिवाय जगतमें ऐसा कौन है जो मुझपर दयादृष्टि करे! प्रभो! मेरे पापोंका पार नहीं है, जब मैं अपने पापोंकी ओर देखता हूँ, तब तो मुझे बड़ी निराशा होती है, करोड़ों जन्मोंमें भी उद्धारका कोई साधन नहीं दीखता, परंतु जब आपके विरदकी ओर ध्यान जाता है, तब तुरंत ही मनमें ढाढ़स आ जाता है। आपके वे वचन स्मरण होते हैं, जो आपने रणभूमिमें अपने सखा और शरणागत भक्त अर्जुनसे कहे थे—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।  
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥  
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।  
कौनेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥  
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।  
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता ९। ३०-३१, १८। ६६)

‘अत्यन्त पापी भी अनन्यभावसे मुझको निरन्तर भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने अबसे आगे केवल भजन करनेका ही भलीभाँति निश्चय कर लिया है। अतएव वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सनातन परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य समझ कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। हे भाई! तू सब धर्मोंको छोड़कर केवल एक मुझ वासुदेव श्रीकृष्णकी शरण हो जा, मैं तुझे सारे पापोंसे छुड़ा दूँगा, तू चिन्ता न कर।’

कितने सबल शब्द हैं। आपके अतिरिक्त इतनी उदारता और कौन दिखा सकता है? ‘ऐसो को उदार जग माहीं।’ परंतु प्रभो! अनन्यभावसे भजन करना और एकमात्र आपहीकी शरण होना तो मैं नहीं जानता। मैंने तो अनन्त जन्मोंमें और अबतक अपना जीवन विषयोंकी गुलामीमें ही खोया है, मुझे तो वही प्रिय लगे हैं, मैं आपके भजनकी रीति नहीं समझता। अवश्य ही विषयोंके विषम प्रहारसे अब मेरा जी घबड़ा उठा है, हे नाथ! आप अपने ही विरदको देखकर मुझे अपनी शरणमें रखिये और

ऐसा बल दीजिये, जिससे एक क्षणके लिये भी आपके मन-मोहन रूप और पावन नामकी विस्मृति न हो। हे दीनबन्धो! दीनोंपर दया करनेवाला आपके समान दूसरा कौन है?

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ।  
जाहि दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ॥  
सुर, नर, मुनि, असुर, नाग, साहिब तौ घनेरे।  
(पै) तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥  
त्रिभुवन, तिहुँ काल बिदित, बेद बदति चारी।  
आदि-अंत-मध्य राम! साहबी तिहारी॥  
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।  
सुनि सुभाव-सील-सुजसु जाचन जन आयो॥  
पाहन-पसु बिटप-बिहँग अपने करि लीन्हे।  
महाराज दसरथके! रंक राय कीन्हे॥  
तू गरीबको निवाज, हौं गरीब तेरो।  
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥

(विनय-पत्रिका ७८)

हे तिरस्कृत भिखारियोंके आश्रयदाता! आपको छोड़ ऐसा दूसरा कौन है, जो प्रेमसे दीनोंको छातीसे लगा ले? जिसको सारा संसार घृणाकी दृष्टिसे देखता है, घरके लोग त्याग देते हैं, कोई भी मुँहसे बोलनेवाला नहीं होता, उसको आप तुरंत गोदमें लेकर मस्तक सूँधने लगते हैं, हृदयसे लगाकर अभय कर देते हैं। रावणके भयसे व्याकुल विभीषणको आपने बड़े प्रेमसे अपने चरणोंमें रख लिया, पाण्डव-महिषी द्रौपदीके लिये आपने ही वस्त्रावतार धारण किया, गजराजकी पुकारपर आप ही पैदल दौड़े। ऐसा कौन पतित है, जो आपको पुकारनेपर भी आपकी दयादृष्टिसे वंचित रहा है? हे अभयदाता! मैं तो हर तरहसे आपकी शरण हूँ, आपका ही हूँ, मुझे अपनाइये प्रभो!

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।  
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥  
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो।  
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो॥  
ब्रह्म तू हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।  
तात-मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥  
तोहि मोहिं नाते अनेक, मानिये जो भावै।

ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥

(विनय-पत्रिका ७९)

हे पतितपावन! हे आर्तत्राणपरायण! हे दयासिन्धो!

बुरा-भला जो कुछ हूँ, सो आपका हूँ, अब तो आपकी शरण आ पड़ा हूँ, हे दीनके धन! हे अधमके आश्रय! हे भिखारीके दाता! मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। ज्ञान-योग, तप-जप, धन-मान, विद्या-बुद्धि, पुत्र-परिवार और स्वर्ग-पाताल किसी भी वस्तुकी या पदकी इच्छा नहीं है। आपका वैकुण्ठ, आपका परम धाम और आपका मोक्षपद मुझे नहीं चाहिये। एक बातकी इच्छा है, वह यह कि आप मुझे अपने गुलामोंमें गिन लीजिये, एक बार कह दीजिये कि 'तू मेरा है।' प्रभो! गोस्वामीजीके शब्दोंमें भी आपसे इसी अभिमानकी भीख माँगता हूँ—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मेरो॥

(रात्रिकाल ३। ११। २१)

बस, इसी अभिमानमें ढूबा हुआ जगतमें निर्भय विचरा करूँ और जहाँ जाऊँ वहर्ही अपने प्रभुका कोमल करकमल सदा मस्तकपर देखूँ—  
हे स्वामी! अनन्य अवलम्बन, हे मेरे जीवन-आधार। तेरी दया अहंतुकपर निर्भर कर आन पड़ा हूँ द्वार॥  
जाऊँ कहाँ जगतमें तेरे सिवा न शरणद है कोई॥  
भटका, परख चुका सबको, कुछ मिला न अपनी पत खोई॥  
रखना दूर, किसीने मुझसे अपनी नजर नहीं जोड़ी।  
अति हित किया, सत्य समझाया, सब मिथ्या प्रतीति तोड़ी॥  
हुआ निराश, उदास गया विश्वास जगतके भोगोंका॥  
जिनके लिये खो दिया जीवन, पता लगा उन लोगोंका॥  
अब तो नहीं दीखता मुझको तेरे सिवा सहारा और।  
जल-जहाजका कौआ जैसे पाता नहीं दूसरा ठौर॥  
करुणाकर! करुणा कर सत्वर, अब तो दे मन्दिर-पट खोल।  
बाँकी झाँकी नाथ! दिखाकर तनिक सुना दे मीठे बोल॥  
गूँज उठे प्रत्येक रोममें परम मधुर वह दिव्य-स्वर।  
हृतन्त्री बज उठे साथ ही मिला उसीमें अपना सुर॥  
तन पुलकित हो, सुमन-जलजकी खिल जायें सारी कलियाँ॥  
चरण मृदुल बन मधुप उसीमें करते रहें रंगरलियाँ॥  
हो जाऊँ उन्मत्त, भूल जाऊँ तन-मनकी सुधि सारी।  
देखूँ फिर कण-कणमें तेरी छबि नव-नीरद घन प्यारी॥

हे स्वामिन्! तेरा सेवक बन, तेरे बल होऊँ बलवान।  
पाप-ताप छिप जायें हो भयभीत, मुझे तेरा जन जान॥

(पद-रत्नाकर १४७)

इस भावकी प्रार्थना प्रतिदिन करनेसे बड़ा भारी बल मिलता है। जब साधकके मनमें यह दृढ़ निश्चय हो जाता है कि मैं भगवान्‌का दास हूँ, भगवान्‌मेरे स्वामी हूँ, तब वह निर्भय हो जाता है। फिर माया-मोहकी और पाप-तापोंकी कोई शक्ति नहीं जो उसके सामने आ

सके। जब पुलिसका एक साधारण सिपाही भी राज्यके सेवकके नाते राज्यके बलपर निर्भय विचरता है और चाहे जितने बड़े आदमीको धमका देता है, तब जिसने अखिल-लोकस्वामी 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' भगवान्‌को अपने स्वामीरूपमें पा लिया है, उसके बलकि क्या पार है? ऐसा भक्त स्वयं निर्भय हो जाता है और जगत्के भयभीत जीवोंको भी निर्भय बना देता है।

( साधन-पथ )

## कर्मफल

( श्रीराजेशजी माहेश्वरी )

जबलपुर शहरसे लगी हुई पहाड़ियोंपर एक पुजारीजी रहते थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि पहाड़ीसे गिरे हुए पत्थरोंको धार्मिक स्थलका रूप दे दिया जाय। इसे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये उन्होंने एक पथरको तराशकर मूर्तिका रूप दे दिया और आसपासके गाँवोंमें मूर्तिके स्वयं प्रकट होनेका प्रचार-प्रसार करवा दिया।

इससे ग्रामीण श्रद्धालुजन वहाँपर दर्शन करने आने लगे। इस प्रकार बातों-बातोंमें ही इसकी चर्चा शहरभरमें होने लगी कि एक धार्मिक स्थानका उद्गम हुआ है। इस प्रकार मन्दिरमें दर्शनके लिये लोगोंकी भारी भीड़ आने लगी। वे वहाँपर मन्त्रोंमाँगने लगे। अब श्रद्धालुजनोंद्वारा चढ़ायी गयी धनराशिसे पुजारीजीकी तिजोरी भरने लगी और उनके कठिनाइयोंके दिन समाप्त हो गये। मन्दिरमें लगनेवाली भीड़से आकर्षित होकर नेतागण भी वहाँ पहुँचने लगे और क्षेत्रके विकासका सपना दिखाकर अपनी लोकप्रियता बढ़ानेका प्रयास करने लगे।

कुछ वर्षों बाद पुजारीजी अचानक बीमार पड़ गये। जाँचके उपरान्त पता चला कि वे कैंसर-जैसे घातक रोगकी अन्तिम अवस्थामें हैं। यह जानकर वे फूट-फूटकर रोने और भगवान्‌को उलाहना देने लगे कि हे प्रभ! इतना कठोर दण्ड क्यों दिया जा रहा है? मैंने तो जीवनभर आपकी सेवा की है।

उनका जीवन बड़ी पीड़ादायक स्थितिमें बीत रहा था। एक रात अचानक ही उन्होंने स्वप्नमें देखा कि प्रभु उनसे कह रहे हैं कि तुम मुझे किस बातका उलाहना दे रहे हो? याद करो, एक बालक भूखा-प्यासा मन्दिरकी शरणमें आया था। अपने उदरपूर्तिके लिये विनप्रतापूर्वक दो रोटी माँग रहा था, परंतु तुमने उसकी एक ना सुनी और उसे दुत्कारकर भगा दिया। एक दिन एक वृद्ध बरसते हुए पानीमें मन्दिरमें आश्रय पानेके लिये आया था। उसे मन्दिर बन्द होनेका कारण बताते हुए तुमने बाहर कर दिया था। गाँवके कुछ विद्यार्थींगण अपनी शालाके निर्माणके लिये दानहेतु निवेदन करने आये थे। उन्हें शासकीय योजनाओंका लाभ लेनेका सुझाव देकर तुमने विदा कर दिया था। मन्दिरमें प्रतिदिन जो दान आता है, उसे जनहितमें खर्च न करके, यह जानते हुए भी कि यह जनताका धन है, तुम अपनी तिजोरीमें रख लेते हो। तुमने एक विधवा महिलाके अकेलेपनका फायदा उठाकर उसे अपनी इच्छापूर्तिका साधन बनाकर उसका शोषण किया और बदनामीका भय दिखाकर उसे चप रहनेपर मजबर किया।

इतने दुष्कर्मोंके बाद तुम्हें मुझे उलाहना देनेका क्या अधिकार है ? तुम्हारे कर्म कभी धर्मप्रधान नहीं रहे। जीवनमें हर व्यक्तिको उसका कर्मफल भोगना ही पड़ता है। इन्हीं गलतियोंके कारण तुम्हें इसका दण्ड भोगना पड़ेगा। पुजारीजीकी आँखें अचानक खुल गयीं और स्वप्नमें देखे गये दृश्य मानो यथार्थमें उनकी आँखोंके सामने धूमने लगे और पश्चात्तापके कारण उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

## कृतज्ञता

( श्रीअगरचन्दजी नाहटा )

‘तत्त्वार्थसूत्र’ का एक वाक्य है—‘परस्परोपग्रहो जीवानाम्’ अर्थात् जगत्के जीव एक-दूसरेसे उपकृत होते रहते हैं। संसारका प्रवाह अनादि कालसे चला आ रहा है। अतः पता नहीं, हमारी आत्माने कितने जीवोंको किस-किस तरह एवं कब-कब उपकृत किया है या किन-किन जीवोंसे हम स्वयं उपकृत होते रहे हैं। अनेक जन्मोंकी बात एक बार छोड़ भी दें और केवल इस जन्मपर ही विचार करें तो भी हमें ऐसा प्रतीत होगा कि जन्मसे लेकर अबतक सैकड़ों-हजारों व्यक्तियोंसे हमने सहायता ली है एवं सहयोग प्राप्त किया है। हमारा वर्तमान जीवन बहुत कुछ दूसरोंके सहयोग-सहायता एवं उपकारसे ही गतिमान् है। परंतु हम दूसरोंके उपकारोंको बहुत कम याद रखते हैं। उनके द्वारा हुई बहुत-सी बातोंको हम साधारण-सी मान लेते हैं और दूसरेके उपकारोंकी उपेक्षा कर देते हैं। इसीलिये हमारे प्राचीन महर्षियों एवं विद्वानोंने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि किसीके छोटेसे या थोड़ेसे उपकारको भी हमें सदा स्मरण रखना चाहिये, उसे कभी नहीं भूलना चाहिये।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान्-जैसे निस्पृह एकनिष्ठ सेवकके द्वारा की गयी सेवाओंके प्रति अपनेको कृतज्ञ अनुभव करते और कहते हैं—‘हे हनुमान्! तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि—कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं बदलेमें तुम्हारा उपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता। हे पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उत्तरण नहीं हो सकता।’

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥  
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥  
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउं करि बिचार मन माहीं॥

(राघूमा० ५। ३२। ३-५)

ऐसे ही अनेक आदर्श हमारे शास्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं। दूसरोंके दोषोंको तथा अपने किये हुए उपकारोंको भूल जाना अच्छा है, पर दूसरोंके किये हुए

उपकारोंको सदा स्मरण रखकर उनका कृतज्ञ होना चाहिये। मनुष्यपर प्रभु और प्रकृतिके भी अनन्त उपकार तो हैं ही; अतः हम परमात्माके कृतज्ञ हों, यह सदा-सर्वदा परम आवश्यक है। दूसरेके किये हुए उपकारको भूल जानेवालेको ‘कृतज्ञ’की संज्ञा दी जाती है और स्मरण रखनेवालेको ‘कृतज्ञ’ कहा जाता है।

यहाँ कृतज्ञकी महत्ता और कृतज्ञकी निकृष्टता सूचित करनेवाले कुछ श्लोक दिये जाते हैं—

न विस्मरन्ति संतस्तु स्तोकमप्यपकारकम्।

कर्तुः प्रत्युपकारे ते व्यापृताः स्युर्हृदा सदा॥।  
प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः

शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।

उदकममृततुल्यं दद्युराजीवितान्तं

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥।

‘साधु पुरुष या संत-महात्मा किसीके थोड़े-से भी उपकारको कभी भूलते नहीं हैं। वे उपकारी पुरुषका प्रत्युपकार करनेके कार्यमें सदा हृदयसे तत्पर रहते हैं। नारियलके छोटे पौधेको मनुष्य जलसे सींचते हैं। अपनी प्रथम अवस्थामें पीये गये उस थोड़े-से जलको याद रखते हुए वे नारियलके वृक्ष अपने सिरपर सदा जलका भार उठाये रखते हैं और जीवनपर्यन्त मनुष्योंको अमृतके तुल्य स्वादिष्ट जल देते रहते हैं। सच है, साधुजन किसीके किये हुए उपकारको कभी भूलते नहीं हैं।’—

कुतः कृतज्ञस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्।

अश्रद्धेयः कृतज्ञो हि कृतज्ञे नास्ति निष्कृतिः॥।

‘कृतज्ञको कहाँ यश, कहाँ स्थान और कहाँ सुख मिलता है। कृतज्ञ मनुष्यपरसे सबका विश्वास उठ जाता है। कृतज्ञके उद्धारके लिये कोई उपाय या प्रायशिच्चत नहीं है।’ तात्पर्य यह कि कृतज्ञ होना इतना बड़ा पाप है कि उससे मनुष्यका कभी उद्धार नहीं होता, पर कृतज्ञ पुरुष विरले ही होते हैं। कहा भी है—

विद्वांसः शतशः स्फुरन्ति भुवने सन्त्येव भूमीभृतो

वृत्तिं वैनयिकीं च बिभ्रति कति प्रीणन्ति वारिभः परे।

दृश्यन्ते सुकृतक्रियासु कुशला दातापि कोऽपि क्लीचित्  
 कल्प्योर्वीरुहवद्वने न सुलभः प्रायः कृतज्ञो जनः ॥  
 'संसारमें विद्वान् तो सैकड़ों दृष्टिपथमें स्फुरित होते हैं; राजाओंकी भी कमी नहीं है; विनयशील वृत्तिको भी कितने ही लोग धारण करते हैं; दूसरे ऐसे सज्जन भी हैं, जो अपने वचनोंसे सबको प्रसन्न कर लेते हैं; पुण्यकर्ममें कुशल पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं और कहीं-कहीं कोई दाता भी मिल ही जाता है; यह सब कुछ है, परंतु जैसे वनमें कल्पवृक्ष सुलभ नहीं है, उसी प्रकार आजकल कृतज्ञ मनुष्य प्रायः दुर्लभ हैं।'

आज तो कृतज्ञताका दुष्काल ही दिखायी देता है। कृतज्ञ व्यक्तियोंकी ही अधिकता है। अतः पाठकोंसे कृतज्ञता अपनानेका अनुरोध है; यही हम सबका कर्तव्य भी है। 'कृतज्ञता' बहुत बड़ा गुण है। मनुष्यमें ही नहीं, वह पशु-पक्षियोंमें भी पाया जाता है। वे भी उपकारोंका बदला चुकानेके लिये अपने प्राणोंतककी बलि दे देते हैं। जब पशुओंकी ऐसी स्थिति है, तब मनुष्य तो उनकी अपेक्षा विशेष विकेशील प्राणी है; उसे तो कृतज्ञ होना ही चाहिये; क्योंकि कृतज्ञताको सबसे बड़ा पाप बतलाया गया है।

अनेक अवसरोंपर किया हुआ थोड़ा-सा भी उपकार बहुत बड़ा काम कर जाता है। यदि उस समय कोई सहयोग सहायता देनेवाला न मिले तो भारी हानि उठानी पड़ती है। सम्पूर्ण जीवनके लिये भी खतरा पैदा हो जाता है। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते। इसलिये उपकारीके उपकारको भूल जाना कदापि उचित नहीं है। जहाँतक हो सके, हृदयमें तो उसके प्रति सद्भाव रखें ही; साथ ही प्रकटरूपमें भी और दूसरोंके सामने भी उसका उपकार मानना चाहिये। इतना ही नहीं, यथाशक्ति उस उपकारका बदला चुकानेका भी पूरा प्रयत्न करना चाहिये। पर आज 'कृतज्ञता' का भाव अत्यधिक शिथिल हो गया है। इससे भारतकी प्राचीन संस्कृतिको बहुत धक्का पहुँचा है। आवश्यकता है—पुनः उस आदर्शको जीवनमें अपनानेकी।

सबसे पहला महान् उपकार होता है—माताका,

जिसके द्वारा यह शरीर प्राप्त होता है, बढ़ता है, पुष्ट होता है और कार्यक्षम बनता है। माताको साढ़े नौ महीनेतक गर्भस्थ शिशुको कितने कष्टसे उदरमें रखना पड़ता है, उसके रक्षण और पोषणके लिये कितना सतर्क रहना पड़ता है, यह भुक्तभोगी माता ही जानती है। बच्चेके जन्मके समयकी प्रसववेदना कितने भयंकररूपमें भोगनी पड़ती है। उस विषम अवसरपर कई माताएँ तो अपने प्राणोंकी बलितक भी चढ़ा देती हैं, यह सभी अच्छी तरहसे जानते हैं। जन्मके बाद भी बच्चेके पालन-पोषणमें माताको कितना कष्ट उठाना पड़ता है। रात-रातभर जागना पड़ता है। उसके मल-मूत्रको साफ करनेमें घृणा और देरी नहीं की जा सकती। जननी स्वयं गर्भी-सर्दी सहन करती है, पर बच्चेको तनिक भी गर्भी-सर्दी न लग जाय, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उसे अपने खाने-पीनेमें भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है, इच्छाओंपर रोक लगानी पड़ती है। शिशु कहीं गिर न जाय, उसे कोई दुःख-दर्द न हो, इसकी भी वह पूरी सावधानी रखती है। ऐसी जन्मदात्री एवं लालन-पोषण करनेवाली माँके उपकारको भी बड़े होनेपर बच्चे भूल जाते हैं, यह सबसे बड़ी कृतज्ञता है। आजकल आधुनिक शिक्षाके प्रवाहमें बहनेवाले युवक तो यहाँतक कह देते हैं कि 'इसमें उपकारकी क्या बात हुई, अपने मोहके कारण ही वह सब काम करती है।'

माँके बाद दूसरा स्थान पिताका है। घरका सारा खर्च दिनभर परिश्रम करके और खोटे-खरे काम करके पिता किसी तरह चलाते हैं। अपने बच्चोंको अच्छा खाना-कपड़ा मिले, वे अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करके होशियार बनें, इसलिये पिताको अत्यधिक प्रयत्न करना पड़ता है। पर जब बच्चा अपने पैरोंपर खड़ा होनेयोग्य बन जाता है, उसका विवाह हो जाता है, तब वह माता-पिताकी अवहेलना करना प्रारम्भ कर देता है। कुछ लोग तो अपने माता-पिताको मारते-पीटतेक हैं। उनको समयपर अच्छा खाना नहीं देते, रोगी होनेपर न ठीकसे इलाज करवाते हैं और न सेवाशुश्रूषा करते हैं। माता-पिताने उनको इतने वर्षोंतक पाल-पोषकर योग्य

बनाया, इस बातको भूलकर बहुत-से नवयुवक अपनी पत्नीके इतने वशीभूत हो जाते हैं कि माता-पिताको अनेक प्रकारसे कष्ट देनेमें भी वे नहीं हिचकिचाते। पिताकी सम्पत्तिके वे मालिक तो बन जाते हैं, पर उनकी उचित सार-संभालसे मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिये। संतान माता-पिताके उपकारोंको मानती रहे और उसे प्रकट करती रहे—यह भी आजके युगमें बहुत बड़ी बात समझी जाती है।

प्राचीनकालमें प्रातः उठते ही माता-पिताको नमस्कार करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनको हर तरहसे सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था। आजके अनेक युवक तो उच्च पदाधिकारी हो जानेपर अपने साधारण वेष-भूषावाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिताको दूसरोंके सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। ऐसे 'सपूतों'से सेवाकी क्या आशा रखी जाय?

तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरुजनोंका होता है, जो बच्चोंको हर तरहकी सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवनको सुसंस्कृत एवं सफल बनानेमें सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन शिक्षाओंको भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनोंके प्रति आदरका भाव नहीं रखते, ऐसे युवकोंकी कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चाका विषय बनी हुई हैं। आज तो स्थिति इतनी विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और सर्वोच्च शिक्षा-अधिकारियोंतकको मार-पीट देते हैं और कुलपतियोंतकका घेराव कर बैठते हैं। उनके वचनोंका निरादर करने और प्रतिवाद करनेमें ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयोंको नुकसान पहुँचानेमें भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेशमें न करनेयोग्य हत्याएँतक कर बैठते हैं। यह स्थिति बड़ी ही भयानक एवं लज्जाजनक है। विद्यार्थी-समुदाय हमारे ही बच्चे हैं, हम उनकी त्रुटियाँ नहीं बता रहे हैं, केवल वस्तुस्थितिपर विचार कर

रहे हैं।

धर्मगुरुओंका भी जीवनमें महान् उपकार होता है, जो हमें बुराइयोंसे बचाते हुए सद्गुणोंके विकास और नैतिक उत्थानकी निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं। जिनसे मानव अनेक दुःखों और पापोंसे बचते हुए इहलोक और परलोकका महान् हित-साधन करनेमें समर्थ होता है, ऐसे धर्मगुरुओंके प्रति भी आदर और श्रद्धाकी कमी बहुत ही खटकनेवाली है।

इसी तरह जीवनमें न जाने कितने लोगोंने हमारे कितने उपकार किये हैं? किसीने आर्थिक सहयोग दिया, किसीने सत्परामर्श दिया, सद्बुद्धि दी तथा किसीने रुग्णावस्था और कष्टके समय सेवा-सहायता की। इस प्रकार हमपर हुए उपकारोंका सही या पूरा लेखा-जोखा लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरोंके सहयोगपर आधारित एवं निर्भर है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको अपनेमें कृतज्ञताके सद्गुणका भंडार उत्तरोत्तर विकसित करते जाना चाहिये; अन्यथा कृतज्ञता सर्वत्र व्याप्त हो जायगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है।

प्रत्युपकारकी कामना सबके मनमें होती है, पर आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरोंके उपकारको स्वयं भूल जाते हैं; फिर अकृतज्ञताके प्रवाहमें उनके उपकारको कौन याद रखेगा? आप दूसरोंको सम्मान देंगे तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरोंके कृतज्ञ रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूसरे व्यक्ति कृतज्ञ हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषोंको तो उनकी ओरसे उदासीन रहते हुए अपने भावोंमें और व्यवहारमें परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञताको कम नहीं होने देना चाहिये।

कृतज्ञताके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्वारके ये विचार विशेषरूपसे मननीय हैं—

'दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार या भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदयसे उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो; यह मत समझो कि 'यह काम मेरे प्रारब्धसे हुआ है, इसमें उसका मेरे

ऊपर क्या उपकार है; वह तो निमित्तमात्र है।' बल्कि यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुमपर बड़ी ही दया की है। उसके उपकारको जीवनभर स्मरण रखो, स्थिति बदल जानेपर उसे भूल न जाओ और सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो, काम पड़नेपर हजारों आदमियोंके सामने भी उसका उपकार स्वीकार करनेमें संकोच न करो। ऐसा करनेसे परस्पर प्रेम बढ़ेगा, आनन्द और शान्तिकी वृद्धि होगी, लोगोंमें दूसरोंको सुख पहुँचानेकी प्रवृत्ति और इच्छा अधिकाधिक

उत्पन्न होगी, सहानुभूति और सेवाके भाव बढ़ेंगे। याद रखो—उपकार या सेवा करनेवालेके प्रति कृतज्ञ होकर मनुष्य जगत्की एक बड़ी सेवा करता है; क्योंकि इससे उपकार करनेवालेके चित्तको सुख पहुँचता है, उसका उत्साह बढ़ जाता है और उसके मनमें उपकार या सेवा करनेकी भावना और भी प्रबल हो उठती है। कृतज्ञके प्रति परमात्माकी प्रसन्नता और कृतञ्चके प्रति कोप होता है। इससे कृतज्ञ बनो और उपकारीके उपकारोंको कभी न भूलो।' ('आनन्दकी लहरें')

### प्रेरक-प्रसंग—

## संतकी सहनशीलता

एक महात्मा जंगलमें कुटिया बनाकर एकान्तमें रहते थे। उनके अक्रोध, क्षमा, शान्ति, निर्मोहिता आदि गुणोंकी ख्याति दूर-दूरतक फैली हुई थी। मनुष्य पर-गुण-असहिष्णु होता है। उनकी शान्ति भंग करके क्रोध दिलाया जाय—इसकी होड़ लगी। दो मनुष्योंने इसका बीड़ा लिया। वे महात्माकी कुटियापर गये। एकने कहा—‘महाराज! जरा गाँजेकी चिलम तो लाइये।’ महात्मा बोले—‘भाई! मैं गाँजा नहीं पीता।’ उसने फिर कहा—‘अच्छा तो तमाखू लाओ।’ महात्माने कहा—‘मैंने कभी तमाखूका व्यवहार नहीं किया।’ उसने कहा—‘तब बाबा बनकर जंगलमें क्यों बैठा है? धूर्त कहींका।’ इतनेमें पूर्व योजनाके अनुसार बहुत-से लोग वहाँ जमा हो गये। उस आदमीने सबको सुनाकर फिर कहा—‘पूरा ठग है, चार बार तो जेलकी हवा खा चुका है।’ उसके दूसरे साथीने कहा—‘अरे भाई! मैं खूब जानता हूँ, मैं साथ ही तो था। जेलमें इसने मुझको डण्डोंसे मारा था, ये देखो उसके निशान। रातको रामजनियोंके साथ रहता है, दिनमें बड़ा संत बन जाता है।’ यों वे दोनों एक-से-एक बढ़कर—झूठे आरोप लगाने लगे, कैसे ही महात्माको क्रोध आ जाय, अन्तमें महात्माके माता-पिताको, उनके साधनको तथा वेशको भी गाली बकने लगे। बकते-बकते सारा भण्डार खाली हो गया। वे चुप हो गये। तब महात्माने शक्करकी पुड़िया आगे रखकर हँसकर कहा—‘भैया! थक गये होगे, एक भक्तने शक्करकी पुड़िया दी है, इसे जरा पानीमें डालकर पी लो।’

वह मनुष्य महात्माके चरणोंपर पड़ गया और बोला—‘मुझे क्षमा कीजिये महाराज! मैंने आपका बड़ा अपराध किया है। हमलोगोंके इतना करनेपर भी महाराज! आपको क्रोध कैसे नहीं आया?’

महात्मा बोले—‘भैया! जिसके पास जो माल होता है, वह उसीको दिखाता है। यह तो ग्राहककी इच्छा है कि उसे ले या न ले। तुम्हारे पास जो माल था, तुमने वही दिखाया, इसमें तुम्हारा क्या दोष है, परंतु मुझे तुम्हारा यह माल पसन्द नहीं है।’

दोनों लज्जित हो गये। तब महात्माने फिर कहा—‘दूसरा आदमी गलती करे और हम अपने अन्दर आग जला दें, यह तो उचित नहीं है। मेरे गुरुजीने मुझे यह सिखाया है कि क्रोध करना और अपने वदनपर छुरी मारना बराबर है। ईर्ष्या करना और जहर पीना बराबर है। दूसरोंकी दी हुई गालियाँ और दुष्ट व्यवहार हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकते।’

यह सुनकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए और महात्माको प्रणाम करके चले गये।

### साधकोंके प्रति—

केवल भगवान् ही अपने हैं

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।**

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

(गीता १५।७)

‘इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही प्रकृतिमें स्थित मनसहित इन छः इन्द्रियोंको आकष्ट करता है।’

भगवान् जीवात्माको तो अपना अंश बतलाया है और मनसहित छः इन्द्रियोंको प्रकृतिमें स्थित अर्थात् प्रकृतिका अंश बतलाया है। जीवात्मा अपने अंशी भगवान् में ही स्थित है, परंतु वह अपने आपको प्रकृतिमें स्थित मान लेता है—‘पुरुषः प्रकृतिस्थो हि’ (गीता १३। २०) अर्थात् मन एवं इन्द्रियोंके साथ एकताकर स्वयं सुख-दःखोंके भोगनेमें हेतु बन जाता है—

पुरुषः सखदःखानां भोक्तृत्वे हेतरुच्यते ॥

(गीता १३।२०)

यदि जीवात्मा प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध (जो केवल माना हुआ है) न माने तो उसे महान् आनन्दकी प्राप्ति (जो स्वतः है उस)-का अनुभव हो जाय, क्योंकि महान् आनन्दपर जीवात्माका जन्मसिद्ध अधिकार है। वस्तुतः यह अधिकार जन्मसे भी पहलेका है—अर्थात् सदासे है और सदा रहेगा।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सखरासी ।

(गोचरमा० ७ | ११७ | २

जीव इस महान् आनन्दसे विमुख हुआ है, दूर नहीं हुआ है। इस महान् आनन्दकी उसे विस्मृति हो गयी है। अतएव यदि आपको उस महान् आनन्दका अनुभव नहीं हो रहा है तो आपको उसके लिये प्रकृतिसे अपना सम्बन्ध छोड़ देना होगा। कैसे छोड़े? मन, इन्द्रियाँ, शरीरादिको अपना नहीं मानें। ये सब प्रकृतिके हैं और इन्हें अपना मान लेना ही इन्हें खींचना या आकर्षित करना है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि हम इन्हें अपना मानेंगे तो जहाँ जायेंगे वहीं ये भी साथ जायेंगे। इनसे छुटकारा नहीं हो पायेगा। अतएव ये अपने नहीं हैं—ऐसा अच्छी तरहसे

अनुभव कर लेना चाहिये।

जिस शरीरको हम अपना मानते हैं, क्या उसे अपने इच्छानुसार रख सकते हैं? क्या उसे बीमार नहीं होने देंगे? क्या उसे मरने नहीं देंगे? क्या उसे कमज़ोर नहीं होने देंगे? यदि यह सब अपने वशकी बात नहीं है तो फिर हम शरीरको अपना कैसे मानते हैं? यदि हम शरीरको अपने इच्छानुसार बदल नहीं सकते तो फिर इसे अपना मानना ही छोड़ देना चाहिये? जिसपर हमारा आधिपत्य न चल सके, उसे अपना मानना भूल ही है। अपने तो केवल भगवान् ही हैं। हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं। यह शरीर संसारका है और संसार शरीरका है। हम और भगवान् एक जातिके (अविनाशी) हैं और शरीर तथा संसार एक जातिके (विनाशी) हैं। इस प्रकार भगवान्‌को अपना माननेमें कोई परतन्त्र, अयोग्य, निर्बल और अनधिकारी नहीं है।

यदि आप कहें कि हमारे पूर्वकृत पाप बहुत हैं तो कोई बात नहीं। आप चाहे जैसे भी हों, पर भगवान्‌को तो अपना मान ही सकते हैं। क्या कुपुत्र माँको अपनी नहीं मानता? अतएव भगवान्‌को अपना माननेमें प्रत्येक मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है। भगवान्‌के अतिरिक्त किसी दूसरेको अपना माननेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। जिसे आप अपनी माँ मानते हैं, वह किसी दूसरेकी बहन भी होगी, बेटी भी होगी और इसी प्रकार उसके पत्नी, चाची आदि कितने ही अन्य सम्बन्ध होंगे, जिनकी आप गिनती भी न कर सकें। इतने सम्बन्धोंके बीच आप उसे अपनी माँ ही मानते हैं। भगवान्‌का भी अनेकोंके साथ सम्बन्ध है, पर वह पूर्णतः स्वकीय सम्बन्ध है। सभी भगवान्‌के अंश हैं और सभीका भगवान्‌के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। संसारके साथ सम्बन्ध तो केवल चिपकाया हुआ है। यह शरीर माँकी कोखसे पैदा हुआ और माँने इसका पालन-पोषण किया, तब वह माँ कही गयी। इस प्रकार यह माँ तो बनी हुई है, परंतु भगवान् सदासे अपने ही हैं। भगवान्‌को हरेक मनुष्य अपना मान सकता है, परंतु

आपकी माँको हरेक मनुष्य अपनी माँ नहीं मान सकता। सभी मनुष्य भगवान्‌को चाहे जिस सम्बन्धसे पुकार सकते हैं। गोस्वामीजी भगवान्‌के प्रति कहते हैं—

तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।  
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥

(विनय-पत्रिका ७९)

स्वयं भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४।११)

‘जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।’ आप संसारमें चाहे जैसा भी सम्बन्ध जोड़ लें, कोई भी ऐसी घोषणा नहीं कर सकता कि ‘तुम हमें जैसा मानोगे, हम भी तुम्हें वैसा ही मानेंगे।’ यदि कोई मानेगा भी तो वह आपको नहीं मानेगा। आपके पास धन है, ऊँचा पद है, उसके नाते आपको अपना मान लेगा। जब धन चला जायगा, पद छिन जायगा, तब आपको कोई अपना नहीं मानेगा। यदि आपके पास योग्यता, अधिकार, बल, विद्या आदि नहीं होंगे और आपके पास किसीकी आशा-पूर्तिकी सामग्री नहीं होगी, तो आपको कोई अपना नहीं मानेगा। मरनेके बाद सम्बन्धी लोग शरीरको जला देते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि अब यह किसी कामका नहीं रहा। इससे अब कोई मतलब सिद्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार संसारमें किसी-न-किसी स्वार्थसे ही दूसरे आपको अपना मानते हैं, परंतु भगवान् बिना किसी मतलबके सदासे ही आपके अपने हैं। आपका उनके साथमें जो अपनापन है, वह कभी (त्रिकालमें) भी टूट

नहीं सकता। केवल आप ही भगवान्‌से विमुख हुए हैं। अतएव आपको भगवान्‌के सम्मुख हो जाना है कि ‘मैं भगवान्‌का हूँ; किंतु शरीर आदिको अपना नहीं मानना है। ये अपने हैं ही नहीं। यदि भगवान्‌को अपना मानोगे तो निहाल हो जाओगे, बादमें कभी किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं पाना पड़ेगा, प्रत्युत स्वतः सिद्ध, अपार, अनन्त आनन्द-ही-आनन्द रहेगा।

हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—इन दोनों सम्बन्धोंमें भी ‘हम भगवान्‌के हैं’ यह भाव-सम्बन्ध अधिक ऊँचा है; क्योंकि ‘भगवान् हमारे हैं’ इस भावमें भगवान्‌पर अधिकार हो सकता है कि भगवान्‌को ऐसा करना चाहिये और न करनेपर खिन्नता भी हो सकती है। अतएव भगवान्‌को क्या करना चाहिये, इसे वे ही जानें, हमें तो केवल इतना ही जानना है कि ‘हम उनके हैं।’ ऐसा माननेपर भगवान् जो विधान करें—सुखदायी या दुःखदायी, सब हमारे लिये प्रसन्नताका कारण होगा। हम सदा आनन्दमें रहेंगे।

यदि हम संसारके साथ अपनापनका सम्बन्ध तोड़ दें तो फिर कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। भगवान्‌के साथ सदासे जो घनिष्ठ एवं अटूट सम्बन्ध है, वह स्वतः प्रकट हो जायगा। कोई अत्यन्त निर्धन, अनपढ़, नीच, पापी एवं अयोग्य कैसा भी क्यों न हो, आवश्यकता है अनन्यतासे प्रभुके प्रति समर्पित होने और यह माननेकी कि—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

ऐसी अनन्य निष्ठा (दृढ़भाव) हो जानेपर फिर आगेकी बात स्वतः बन जायगी।

## अनमोल बोल

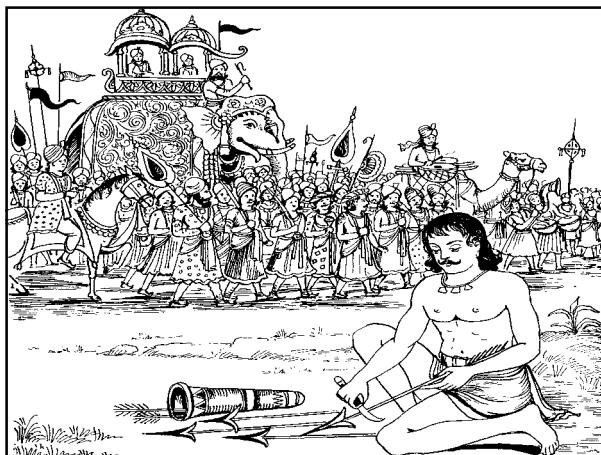
यदि तुमने ईश्वरको पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालोंसे दोस्ती करो।

- ✽ ऊपर चढ़नेकी सीढ़ियाँ ये हैं—
- ✽ सांसारिक पदार्थोंके पीछे दौड़ना छोड़ना।
- ✽ सांसारिक विषयोंसे विरक्त होना।
- ✽ परमात्मयोगके मार्गको पकड़ना।
- ✽ निर्मलता और प्रभुप्रेम प्राप्त करना।

## संत-वचनामृत

( वृद्धावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे )

\* अनुकूल आचरणोंसे तथा प्रतिकूल आचरणोंसे—  
दोनोंसे दत्तात्रेयजीने शिक्षा ली। मधुमक्खी संग्रहसे नष्ट होती है, यह प्रतिकूल आचरणसे शिक्षा ग्रहण है। बाण



बनानेवालेसे एकाग्रताकी शिक्षा अनुकूलाचरणसे है। तात्पर्य यह कि शिक्षाग्राही सर्वत्र शिक्षा लेता है और गुरुभावको भी रखता है। गुरुओंमें पिंगला आदिकी गणना हुई और दत्तभगवान्‌ने सर्वत्र अपनी श्रद्धा रखी।

\* गुरु पूर्णिमापर हम लोग सदगुरुदेवके पूज्य श्रीचरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं। यदि स्वयं जगद्गुरु श्रीकृष्ण गुरुरूपसे मार्गदर्शन न करें तो श्रीकृष्णकी ओर कोई जा ही नहीं सकता है। मानव, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, वृक्ष, नदी, पंचभूत आदि सारे संसारके सभी स्वरूपोंके द्वारा या उनमें प्रवेश करके अपनी प्राप्तिका उपाय श्रीकृष्ण ही बताते हैं। अनेक प्रकारसे जीवको अपने भक्तको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, तब कोई नाम-रूपादि साधनोंको अपनाकर प्रभुकी ओर चल सकता है तथा प्रभुको प्राप्त कर सकता है। इसलिये ही प्रभु श्रीकृष्णको जगद्गुरु कहा जाता है। सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये उपदेश देते हैं, अतः जगद्गुरु हैं।

\* गुरु अर्थात् भारी, सबसे बड़ा। एक तत्त्व जगत्‌में श्रीकृष्ण ही हैं। जगत्‌में सबसे गम्भीर गुरुत्व श्रीकृष्णमें है, अतः वे जगद्गुरु सच्चे हैं। अन्य जगत् मायिक हैं, उसमें लघुत्व है गुरुत्व नहीं है। भक्तकी दृष्टिमें ईश्वरसे

प्रकट जगत् ईश्वररूप है, अतः सारा जगत् गुरु है, श्रीकृष्ण है। सारा जगत् श्रीकृष्णकी सता-महत्ताका, तत्त्वका, प्राप्तिका उपदेश देता है, अतः जगद्गुरु है। जगत् श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं है।

\* श्रीविवेकानन्दजीका नाम नरेन्द्र था, पूरे नास्तिक थे। वे कहते थे कि पत्थरकी जड़ मूर्तियोंमें चैतन्य आत्माको लगानेसे क्या लाभ ? श्रीरामकृष्णदेव परमहंसको पागल समझते थे। किसी दिन मनमें आया कि देखें उस पागलको। जब परमहंसजीके पास आये तो उन्होंने कहा—क्यों नरेन्द्र ? तुम इतनी देरसे आये ? नरेन्द्रके मनमें आया कि इन्हें मेरे नामका पता कैसे चला ? इन्होंने कहा कि पत्थरकी मूर्तिके सामने माँ-माँ-माँ करनेसे क्या लाभ ? परमहंसजीने कहा—बेटा ! ये साक्षात् माता हैं। प्यार करती हैं, बातचीत करती हैं। कृपा करके परमहंसने कहा—तुम माताजीके सामने बैठो, ध्यान लगाकर माँ-माँ पुकारो। नरेन्द्रने ऐसा ही किया। परमहंसजीने माताजीसे कहा कि इस बालकपर दया करो। परमहंसकी प्रार्थनापर माताने ध्यानमें दर्शन दिया, सिरपर हाथ रखा। उसी क्षण नरेन्द्रके मनमें विवेककी जागृति हो गयी और गुरुचरणरजके सिरपर लगाते ही विवेकानन्द हो गये। हाय ! हाय कर पछताने लगे कि गुरुचरणोंसे अलग रहकर इतना समय व्यर्थ गया।

\* सेवा के लिये भगवान्‌की प्रतिमा है, पर प्रत्यक्ष सेवाके लिये अपने गुरुजन, पिता-माता हैं। वृद्धकी सेवा, गायकी सेवासे कृष्णभक्ति मिलती है। यदि पिता-माता, संत, विप्र, वृद्ध, गाय आदिको कोई प्रसन्न कर ले तो समझो कि भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया।

\* कलियुगमें श्रद्धा-भक्ति सुरक्षित रहे तो समझो प्रभुकी बड़ी कृपा है। हितकारी उपदेश देनेवाले सभी गुरु हैं। एक गुरुजन मूक उपदेश देते हैं, उनके सदाचारसे शिक्षा मिलती है। वे बोलते नहीं हैं। नदी, वृक्ष, संत आदि मूक उपदेष्टा हैं। दत्तभगवान्‌ने सर्वत्र शिक्षा प्राप्त की थी।

[ परमार्थके पत्र-पुष्पसे साभार ]

## कहानी—

## सात दिनका मेहमान

( पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार' )

(2)

उज्जयिनीमें नागदत्त सेठका नाम देशविख्यात था। नामके साथ दाम एवं व्यापारका काम भी दिनोंदिन बढ़ रहा था। श्रीमानताके तीन चरण—नाम, दाम एवं कामकी वृद्धि होनेपर भी चौथे चरण धामकी कमी उन्हें बेचैन बना रही थी। वैसे तो उनके रहनेका मकान बहुत अच्छा था, पर उसे महल नहीं कहा जा सकता था। अभी-अभी नगरपतिने एक सुन्दर महालय बनवाया था। नागदत्त सेठ उनसे किस बातमें कम थे, जो एक विशाल महल न बनायें ?

इस कार्यके लिये उन्होंने जयपुरके ख्यातनामा शिल्पियोंको बुलवाकर अच्छे-से-अच्छा महल बनवाया। अब केवल उसमें रंगाका काम ही बाकी था। चित्रकामके लिये भी देशके कुशल चित्रकार बुलाये गये थे। रंग-रौगन एवं चित्रकारीका काम चल रहा था।

प्रातःकालका समय था। स्वयं नागदत्त चित्रकारोंको सूचना दे रहे थे—‘चित्रकार! देखना, ऐसी बढ़िया चित्रकलाका काम करना। चाहे जितना धन लग जाय, इसकी चिन्ता नहीं है; किंतु सात पीढ़ियोंतक रंग तथा चित्र ताजे बने रहें, ऐसा काम करना है……। नागदत्त आगे बोल ही रहे थे कि उसी मार्गसे मन्द-मन्द हँसते हुए एक मुनिराज निकले तथा उनको देखकर नागदत्तने अपनी बात पूरी किये बिना ही मुनिराजका वन्दन किया।

मुनिराज अपने हाथसे आशीर्वाद देते हुए नागदत्तकी ओर देखकर मुसकराने लगे। मुनिराज अपूर्व ज्ञानी थे। भिक्षा लेनेके लिये ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा एक ही एकान्त स्थानमें बैठकर जप-ध्यानमें मग्न रहते थे। ऐसे पहुँचे हुए मुनि आशीर्वाद देते-देते हँसे क्यों? नागदत्तको इस बातपर आश्चर्य हुआ। मुनिके जानेके बाद सेठ अपने घर आये। मार्गमें चलते-चलते भी नागदत्तके मनमें यही विचार आ रहा था कि ऐसे प्रौढ़ मुनि मुझे देखकर हैसने क्यों लगे? महलके निर्माणमें कोई त्रुटि रह गयी होगी या चित्रकलामें कोई कसर होगी?

—विचार करते-करते नागदत्त सेठ घर पहुँचे।

(2)

भोजन परोसती हुई नागदत्तकी पत्नी कह रही थी—‘मजदूर लोग काम करते हैं, महल भी अब प्रायः पूरा बन चुका है, फिर भी आप वहाँ खड़े रहकर इतना समय क्यों बिगाड़ते हैं? आपको अपने स्वास्थ्यकी भी चिन्ता नहीं। भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं रहता। आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो है नहीं।’

‘तुम चिन्ता न करो’—भोजन करते-करते नागदत्तने उत्तर दिया। ‘अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-रौगन और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी है। तुम नहीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना पूरा काम नहीं करते हैं।’

सुनकर पत्नी मौन रह गयी। थोड़ी देरके बाद नागदत्तने भोजन करते-करते कहा—‘सातवीं मंजिलपर कलात्मक चन्दनका झूला बन चुका है। सोनेके कड़े भी तैयार हैं। उसी प्रकार हमारे प्यारे मुनेके लिये एक पलना बनानेका भी आर्डर दे दिया है। वह भी सोने-चाँदीका नक्काशीदार बनेगा।’

‘मैं भी गृह-प्रवेश मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ।’  
सेठकी पत्नीने कहा। ‘रसोई तो अच्छी बनी है न?’

‘मैं तो दुविधामें पड़ गया हूँ’—भोजन करते-करते नागदत्त बोले। ‘ये पूड़ियाँ, कचौरी, पकौड़ियाँ, यह स्वादिष्ट श्रीखण्ड—इनकी प्रशंसा प्रथम करूँ या गुलाबके फूल—जैसे अपने मुन्नेकी ?’

‘आप भोजन कर रहे हैं और यह तो देख रहा है’  
मुन्नेको सेठकी गोदमें देती हुई पत्नी बोली। ‘इसे भी दो  
ग्रास खिला दीजिये न ?’

सेठने दो वर्षके मुनेको अपनी गोदमें बैठाया और खीर-पूड़ी का एक छोटा-सा ग्रास उस नन्हे मुनेको खिलाना आरम्भ किया। संयोगवश उसी समय बच्चेने लघुशंका कर दी? थोड़े छीटे भोजनकी थालीमें भी पड़ गये।

‘लो सँभालो अपने लालको।’ पत्नीकी गोदमें बच्चेको रखते हुए सेठने कहा। ‘इसने तो मेरी धोती और थालीको भी बिगाड़ दिया।’

—‘तो इसमें क्या हुआ?’ हँसते हुए पत्नीने उत्तर दिया। ‘बच्चा ही तो है, उसमें समझ थोड़े ही है?’

—बात अधूरी-सी रह गयी, इतनेमें ही आँगनमें से सुनायी दिया—‘धर्म लाभ [भिक्षां देहि]।’

सेठने भोजन करते-करते मुनिराजको बन्दन किया, ठीक उसी समय मुनिराजने मन्द हास्य कर दिया। वह भी पूर्ववत् हास्य! पत्नीने उठकर मुनिराजको भिक्षा दी और मुनिराज लेकर चले गये।

भोजन कर लेनेके बाद सेठ पान-सुपारी खाते-खाते विचार करने लगे—‘ऐसे ज्ञानयोगी मुनिराज बिना कारण हँसते रहें, यह तो सम्भव नहीं है। एकान्तमें जाकर उनसे इस हँसीका कारण पूछना चाहिये।’ भोजनके बाद सेठ बिस्तरपर लेटे; परंतु मन चिन्ताग्रस्त था, इस कारण आज नींद बिलकुल नहीं आयी।

(३)

सायंकाल चार बजेका समय हुआ। दो-एक दिनसे सेठ दूकानपर नहीं जा सके थे। बँगलेका काम जो चल रहा था; किंतु आज थोड़ी देरके लिये उन्होंने दूकानपर जानेका निश्चय किया।

सेठ नागदत्तकी दूकान मध्य बाजारमें थी। मुनीम लोग अपने-अपने काममें लगे थे। गद्दीपर बैठकर सेठ हिसाब-किताब देख रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा बकरा दूकानपर चढ़ आया। उसके पीछे दौड़ता हुआ एक कसाई भी वहाँ आ पहुँचा। कसाई और बकरा दोनोंपर एक ही साथ सेठकी दृष्टि पड़ी। बकरा सेठके सामने कुछ आशाभरी दृष्टिसे देख रहा था, मानो वह मूकभावसे अपनेको छुड़ानेके लिये प्रार्थना कर रहा हो। अतः सेठने कसाईसे कहा—‘इस बकरेको छोड़ दो; मैं तुम्हें एक मुहर दँगा।’

‘सेठ साहब!’ कसाई बोला। ‘जैसे आप व्यापारी हैं, वैसे ही मैं भी एक तरहका व्यापारी ही हूँ। मुझे इस बकरेकी कीमतमें पाँच मुद्रा सहजमें ही प्राप्त हो सकती है, अतः मुझे तो मेरा बकरा ही दे दो।’

नागदत्तसेठ पाँच मुद्रा देना स्वीकार कर लेते, तो

बकरा अवश्य छूट सकता था। सेठने एक दृष्टिसे बकरेकी ओर देखा। बकरा थर्रा रहा था। उसका हृदय पुकार रहा था कि मुझे छुड़ा लो, मुझे छुड़ा लो।

परंतु दूसरी ओर सेठका लोभी मन पाँच मुद्रा देनेसे साफ इनकार कर रहा था। उन्होंने यह भी सोचा कि ‘पाँच मुद्रा देनेपर यह कसाई हिंसाका कार्य थोड़े ही छोड़ देगा? अतः बकरेको वापस देकर पाँच मुद्राएँ बचा लेनी चाहिये।’

दूकानके सभी लोग अपने-अपने काममें व्यस्त थे, अतः स्वयं सेठने खड़े होकर, बकरेका कान पकड़कर उस कसाईको सौंप दिया और कहा—‘ले जा अपना यह माल; पाँच मुद्रा मुफ्तमें नहीं आती। इसके लिये तो पसीना……’ नागदत्त आगे बोल ही रहे थे, किंतु इतनेमें ही दूकानके नजदीकसे अकस्मात् मुनिराज जाते दिखलायी दिये। मुनिराजको देखकर नागदत्तने बन्दन किया। आशीर्वाद देते हुए मुनिराजने फिर मुसकरा दिया।

अब तो नागदत्तसे रहा न गया। दूकानसे नीचे उतरकर उन्होंने बन्दन करते हुए प्रश्न किया—‘मुनिराज! आज दिनभरमें आपके तीन बार दर्शन हुए; परंतु तीनों ही बार आपने मेरे सामने देखकर मन्द हास्य किया—कृपया बतलाइये इसका क्या रहस्य है? मुझसे कोई अपराध हो गया है क्या?’

‘नागदत्त!’ महात्माने गम्भीर होकर कहा। ‘ऐसी बातें सुननेमें अच्छी नहीं लगतीं। प्रभु-पथके पथिककोंके लिये यह उचित भी नहीं है कि ऐसी बातोंमें जान-बूझकर प्रवेश करें।’

‘मुझे दुःख नहीं होगा महाराज!’ नागदत्तके स्वरमें नप्रता थी। वे बोले—‘आपके हास्यमें अवश्य ही कुछ रहस्य है; अतः कृपया उस रहस्यकोनिःसंकोच कह दीजिये।’

‘बहुत अच्छा’—मुनिराज बोले। ‘आज सायंकालके समय आप नदी-किनारे—एकान्तमें आइये, वहीं बातचीत करेंगे।’

—कहकर मुनिराज विदा हो गये।

(४)

सायंकालका समय था। उज्ज्यनीके देवालयोंके घण्टारवोंसे समस्त आकाशमण्डल गूँज उठा। ठीक इसी समय नागदत्तने आकर मुनिराजके चरणोंमें बन्दन किया।

नदी-किनारे सुरम्य वातावरणमें नागदत्तने प्रश्न किया—

महात्मन्! मैं चित्रकारको सूचना दे रहा था, ठीक उसी समय आपने हास्य क्यों किया था?

‘हाँ,’ मुनिराज बोले। ‘चित्रकारको आप किन शब्दोंमें सूचना दे रहे थे? याद है आपको?’

‘जी हाँ’ नागदत्त बोले। ‘मैं चित्रकारसे कह रहा था कि ऐसा चित्रकलाका काम करो जो सात पीढ़ीतक अमिट रह सके।’

‘सुनो नागदत्त!’ मुनिराज बोले—‘सात पीढ़ीपर्यन्त रंग तथा चित्रकारीको अमिट रखनेकी इच्छा करनेवालेको यह पता नहीं है कि वह स्वयं केवल सात दिनका मेहमान है।’

इस स्पष्ट कथनसे नागदत्तके सारे अंग ढीले पड़ गये! उनका स्वर बेसुरा बन गया। आँखें छलक उठीं! कम्पित स्वरसे उन्होंने पूछा—‘आप क्या सच कह रहे हैं? यदि ऐसी ही भावी हो, तो कृपया यह भी बतलाइये कि मेरी मृत्यु किस रोगसे होनेवाली है?’

‘तो सुनो’ महात्माजी बोले। ‘यह पञ्चमहाभूतके संघातरूप देह तो नश्वर है। इसका जन्म और मरण किसीके वशकी बात नहीं है, यह कर्मधीन है—

देहे पञ्चत्वमापने देही कर्मनुगोऽवशः।

देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥

ऐसे कर्मधीन देहको नित्य मानकर मिट्टी, पत्थर और चूनेसे बने हुए मकानका रंग सात पीढ़ीतक बने रहनेकी आशा रखनेवालेके लिये कोई हँसे नहीं तो क्या करे? आपकी मृत्यु भी कर्मधीन होकर आजसे सातवें दिन मस्तकशूलके रोगद्वारा होगी।’

‘तो भगवन्!’ नागदत्तने प्रश्न किया। ‘दूसरी बार भिक्षा लेते समय भी आपने मन्द हास्य किया, उसका कारण भी मैं सुनना चाहता हूँ।’

‘यह बात कहने-सुननेलायक नहीं थी।’ महात्मा बोले—‘किंतु तुम्हारे आग्रहसे और तुम्हारे ही कल्याणके लिये कहना उचित समझता हूँ। देखो, जिस बालकको तुम प्यारा मुन्ना मानकर गले लगाते हो और आज जिसके मूत्रके छींटे लग जानेपर भी तुम उस भोजनको प्रेमसे खा लेते हो, वही तुम्हारा प्यारा पुत्र पूर्वजन्ममें तुम्हारी पत्नीका

जार-पति था, जिसका अपनी पत्नीके साथ एकान्तमें देखकर तुमने घात किया था। मृत्युके बाद वही जीवात्मा तुम्हारी पत्नीके उदरसे जन्म पाकर तुम्हारा अनिष्ट करनेको आया है। तुम्हारी मृत्युके बाद वह महादुराचारी एवं दुर्व्यसनी बनकर तुम्हारे उस महल, तुम्हारी दूकान एवं प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिला देगा। जिस महलका रंग तुम सात पीढ़ीतक कायम रखना चाहते हो, तुम्हारा यही पुत्र तुम्हारी सात पीढ़ीकी सारी प्रतिष्ठाको डुबो देगा। बस, इसी विचारसे दूसरी बार मुझे हँसी आ गयी थी।’

‘महाराज!’ नागदत्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वे बोले—‘मैं चारों ओरसे लुटा जा रहा हूँ। अब मुझे कृपया यह भी बतलाइये कि दूकानके समीपसे निकलते समय आपने तीसरी बार हास्य क्यों किया था?’

‘हाँ, यह भी सुन लो!’ मुनिराज बोले। ‘जिस बकरेको तुमने पाँच मुद्राके लोभसे कसाईके हाथों सौंप दिया, वह तुम्हारे मृत पिताजी थे और वह कसाई पूर्वजन्ममें एक गरीब किसान था। उसके मालके कम पैसे देकर तुम्हारे पिताजीने उसका अपराध किया था। अतः उस पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये उसी किसानके हाथसे उसे मरना पड़ा।

‘देखो भाई!’ थोड़ा रुककर महात्माजी बोले—‘यह संसार तो ऋणानुबन्धनसे ही बनता है, मोहान्ध मानव अपने ही दोषसे इस जंजाल-जालमें फँस जाता है। यह कालदेवकी माया है—

संसारः सिन्धुरूपश्च मीनरूपश्च मानवाः।

जञ्जालो जालरूपश्च कालरूपश्च धीवरः॥

अर्थात् ‘इस अपार संसार-सागरमें मानव-प्राणी मत्स्यके समान है। वही मानवरूप मत्स्य अपने देहाभिमानद्वारा की हुई चतुराई—अहंता-ममतारूप जालको बनाता है और फिर उसी जंजालरूप जालमें कालरूप धीवर उसे पकड़ लेता है।’

नागदत्तको अब सच्ची बात समझमें आ गयी। उन्होंने अपनी सम्पत्तिका दो तृतीयांश भाग धर्मकार्योंमें लगानेका निश्चय कर लिया और अन्ततक स्मरण, सत्संग आदि करते हुए वे सातवें दिन मृत्युके वश हो गये।

(प्राचीन जैनकथाओंके आधारपर लिखित)

# आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन

( पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री )

ज्ञाननिधि आद्य श्रीशंकराचार्य भगवान् शंकरके अवतार थे। उन्होंने समग्र सनातन-धर्म एवं शास्त्रोंका उद्घार किया, विशेषतः वेदके ज्ञानकाण्डका। उनका अपना कोई सिद्धान्त या मत न था। वे अद्वैतवादके प्रवक्तामात्र थे। वस्तुतः ‘शंकर-सिद्धान्त’, ‘सनातन-वैदिक-सिद्धान्त’ है। उसका लक्ष्य अखण्ड, अनन्त, त्रिकालाबाधित, परमानन्दस्वरूप, मोक्षप्राप्ति या मोक्षस्वरूप परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति है। परमात्मासे अभिनन्ता प्राप्त करना ही मोक्ष है। परब्रह्म परमात्मा निराकार, निर्विकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है और वही समस्त प्राणिमात्रका आत्मा है। समस्त प्राणी अज्ञानवश अपने स्वरूपको नहीं जानते। ज्ञानद्वारा अज्ञान-निवारण होनेपर हाथमें रखे पदार्थके समान अभिन्न आत्मस्वरूपका दर्शन होने लगता है।

किसी भी पदार्थका ज्ञान प्रमाणके अधीन है। जैसे लाल-पीला-हरा, वृक्ष, नद-नदी, स्त्री-पुरुष आदिके रूपका ज्ञान नेत्रके अधीन है। रूप-ज्ञानमें नेत्र ही प्रमाण है। वैसे ही प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थसे परे ब्रह्मात्मज्ञानके लिये वेद ही प्रमाण है। किसी भी तर्क या विज्ञानद्वारा उसका ज्ञान सम्भव नहीं; क्योंकि तर्क या विज्ञानकी सीमा प्रकृतिपर्यन्त है। इसी कारण शास्त्रोंमें कहा है—

अतीन्द्रियार्थे धर्मादौ शिवे परमकारणे ।

श्रुतिरेव सदा मानं स्मृतिस्तदनुसारिणी ॥

(सूतसंहिता ८ । १९)

‘अतीन्द्रिय पदार्थ, धर्माधर्म तथा परकारण शिवमें सदैव श्रुति ही प्रमाण है, श्रुतिका अनुसरण करनेवाली स्मृति भी प्रमाण है।’ इसी कारण आस्तिकजन वेद तथा वेदानुकूल शास्त्र-प्रमाण मानते हैं। आद्य श्रीशंकराचार्यने जो भी कहा, वह श्रुति-प्रमाणानुसार ही कहा। अद्वैत ज्ञानतत्त्वका प्रतिपादन मुख्यतः वेदके अन्तिम भाग ‘उपनिषद्’ में हुआ है। जैसे शरीरमें ज्ञानका मुख्यतः केन्द्र सिर है, वैसे ही उपनिषद् वेदके शीर्षस्थानीय हैं। केन्द्रसे ही शाखा-प्रशाखाओंका संचालन तथा संजीवन होता है। यदि उपनिषद् वेदसे पृथक् कर दिये जायें तो शेष भाग ज्ञानशून्य शेष रह

जाय। जगत्-जीव, ईश्वरादि और इनके सम्बन्धोंका विवेचन उपनिषदोंमें ही प्राप्त होता है। वेदव्यासप्रणीत ‘ब्रह्मसूत्र’ उपनिषदोंकी ही व्याख्या है। ‘श्रीमद्भगवद्गीता’ आदि सभी ग्रन्थ उपनिषदोंपर ही आधृत हैं। आचार्य श्रीशंकरने इन सभी ग्रन्थोंपर भाष्य लिखे।

परम तत्त्व एक ही है। उसीमें अनेकताकी भ्रान्ति हो रही है। भ्रान्तिका कारण है—परमतत्त्वका अज्ञान। ज्ञानद्वारा अज्ञान-निवारण होनेपर अनेकताकी भ्रान्ति निवृत्त हो जाती है। उस स्थितिमें आकाशवत् अखण्ड, एक परम तत्त्वानुभूति होती है। तब मानव राग-द्वेष, मानापमान, जन्म-मृत्यु, लाभालाभ, बन्ध-मोक्षादि दृढ़ोंसे ऊपर हो जाता है। आचार्य श्रीशंकर इसी स्थितिमें थे। उनका न कोई अपना था न पराया, न उनमें राग था न द्वेष, न नीचकी कल्पना थी न उच्चकी; पूर्ण साम्यावस्था थी उनमें, उनके हृदयमें करुणा-स्रोत प्रवाहित होता था। इसी कारण वे वेदानुकूल सदुपदेशमें प्रवृत्त रहे। उस समय वेद-विरुद्ध अनेक विद्वानोंद्वारा अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर आचार्यने सत्यथका उपदेश किया और वेदविरुद्ध मत-मतान्तरोंकी निःसारता दिखलायी। कुछ विद्वान् कह सकते हैं—‘उन्हें उपदेशमात्र करना चाहिये था, किसी अन्यका खण्डन नहीं करना चाहिये था। खण्डन करनेसे ज्ञात होता है कि उनमें भी राग-द्वेष था।’ किंतु ऐसा कथन ठीक नहीं है। स्वयं आचार्यने यही प्रश्न उपस्थितकर इसका समाधान किया है। ‘ब्रह्मसूत्र’ (अ० २ पा० २ सू० १ प्र०)-के भाष्यमें उनका कथन है—

‘ननु मुमुक्षुणां मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शननिरूपणाय स्वपक्षस्थापनमेव केवलं कर्तुं युक्तम्, किं परपक्षनिराकरणेन परविद्वेषकारणेन। बाढमेवम्, तथापि महाजनपरिगृहीतानि महान्ति सांख्यादितत्राणि सम्यग्दर्शनापदेशेन प्रवृत्तान्युपलभ्य भवेत् केषाचिन्मद्मन्तीनामेतान्यपि सम्यग्दर्शनायोपादेयानीत्यपेक्षा। तथा युक्तिगाढत्वसम्भवेन सर्वज्ञभाषितत्वाच्च श्रद्धाच तेषु इत्यतस्तदसारतोपपादनाय प्रयत्नते।’

मुमुक्षु पुरुषोंके लिये तो मोक्ष-प्राप्तिके साधनरूपभूत सम्यग्ज्ञान निरूपण करनेके लिये अपना पक्षस्थापनमात्र ही करना युक्त है, परपक्षसे द्वेष करने—परपक्षके निराकरण-खण्डन करनेसे क्या प्रयोजन ? (अब इसका उत्तर देते हैं) यद्यपि आपका यह कथन यथोचित है, तथापि सांख्यादि शास्त्र सज्जनोंद्वारा परिगृहीत—स्वीकृत हैं और वे सम्यग्ज्ञाननिरूपणके व्याजसे प्रवृत्त हुए हैं। उनको प्राप्तकर अनेक मन्दमतियोंकी यह धारणा हो कि ‘यह शास्त्र ही सम्यग्ज्ञानके लिये ग्राह्य है। उनमें दृढ़ युक्तियोंका होना भी सम्भव है और वे सर्वज्ञद्वारा कथित हैं, अतः उनमें मन्दमतियोंकी श्रद्धा भी हो सकती है। इसलिये वे शास्त्र असार हैं—यह उपपादन करनेके लिये प्रयत्न किया जाता है।’ अतः तत्त्व-निर्णयकी इच्छासे परपक्ष-खण्डन द्वेष नहीं है।

आचार्य अतीव उदारमना और शरीराध्यासशून्य थे। एक बार वे ‘श्रीशैल’ गये। मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगके दर्शनकर वे ‘कृष्ण’-नदीके तटपर निवास करने लगे। वहीं एकान्त समय देखकर एक ‘कापालिक’ आचार्यके समीप आया। उसने कपटपूर्वक अतीव नम्रतासे प्रार्थना की और अपना मनोरथ प्रकट किया—‘इस समय संसारमें मोहशून्य, देहाभिमानरहित और अद्वैतवाद सिद्ध करनेवाले एकमात्र आप ही हैं। आपका शरीर परोपकारके लिये है। जो आपके समीप मनोरथ लेकर आता है, वह कभी निराश होकर नहीं जाता। मेरी कामना है, इसी शरीरसे कैलास जाकर वहाँ शिवके साथ रमण करनेकी। इसके लिये मैंने भगवान् शिवकी तीव्र तपस्या की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—‘इसके लिये तुम किसी सर्वज्ञका सिर या किसी राजाका सिर अग्निमें हवन करो।’ अभीतक मुझे न किसी राजाका सिर मिला, न सर्वज्ञका। राजाका सिर पाना मेरे लिये असम्भव है। और आपसे बढ़कर सर्वज्ञ कोई नहीं है। अतः आप अपना सिर मुझे दें, इससे आपकी कीर्ति होगी और मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।’ यह कहकर वह साष्टांग प्रणाम करने लगा।

आचार्यने कहा—‘मैं तुम्हारे वचनोंमें दोष नहीं

निकालता, शरीर कालद्वारा एक दिन अवश्य नष्ट होगा। यदि दूसरेके कार्य-सिद्धिमें इसका उपयोग हो तो इससे बढ़कर और क्या पुरुषार्थ होगा ? मैं एकान्तमें समाधि लगाता हूँ। उस समय आकर तुम मेरा सिर ले लेना। योगिन् ! यदि चिन्तित कार्यको हमारे शिष्य जान लेंगे, तो इसे कभी भी होने न देंगे; क्योंकि वे एकमात्र मेरी शरण हैं। कौन अपने शरीरको त्यागनेके लिये प्रस्तुत होगा और कौन अपने स्वामीको शरीर त्यागने देगा ?’

**शिष्या वदन्ति यदि चिन्तितकार्यमेतद्**

**योगिन्मदेकशरणा विहतिं विदध्युः ।**

**को वा सहेत वपुरेतदपोहितुं स्वं**

**को वा क्षमेत निजनाथशरीरमोक्षम् ॥**

(शंकरदिग्विजय ११। २८)

**शिष्यगण दूर स्नानादि कार्यके लिये गये थे।**

आचार्य एकान्तमें समाप्तीन थे। उसी समय हाथमें त्रिशूल, गलेमें अस्थिमाला तथा मदिरासे घूर्णित नेत्रोंको घुमाता कापालिक आ पहुँचा। भैरवाकार कापालिकको देखकर आचार्यने शरीर-त्यागका निश्चय किया। उन्होंने इन्द्रियोंको उनके व्यापारसे निवारणकर अन्तःकरणमें लीन किया। फिर अन्तःकरणको आत्मामें और आत्माको ब्रह्ममें लीन कर दिया। कापालिकने भी सिर काटनेके लिये हाथमें खड्ग ले लिया। आचार्यके शिष्य पद्मपाद कहीं अन्यत्र ध्यानस्थ थे। उन्होंने ध्यानमें ही देखा कि गुरुजीको कापालिक मारने जा रहा है। वे गुरुके अतीव हितैषी थे। उनके शरीरमें नृसिंहका आवेश हुआ और वे वेगपूर्वक चलते हुए उस स्थानपर पहुँचकर कापालिकके ऊपर कूद पड़े। वे उग्र नखोंसे कापालिकके वक्षःस्थलको विदीर्णकर भयंकर अद्वृहास करने लगे। उच्च निनाद सुनकर अन्य शिष्य भी वहाँ आ गये। आचार्य पूर्ववत् समाधिस्थ थे। कुछ कालके पश्चात् आचार्यकी समाधि टूटी। उन्होंने कापालिकको मरा पड़ा देखा। आप इस प्रकार समदर्शी, उदार, राग-द्वेषशून्य तथा शरीराभिमानरहित थे।

आचार्य वेदोक्त कर्म, उपासना तथा ज्ञानका प्रतिपादन करते थे। किंतु मोक्ष एकमात्र ज्ञानसे ही होता है और यही वेदका परम तात्पर्य है—ऐसी उनकी मान्यता थी और यह

मान्यता श्रौत-प्रमाणसे भी सिद्ध है। उनका कथन है—  
न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।  
ब्रह्मान्वैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा॥

(विवेकचूडामणि ५८)

‘परमानन्दस्वरूप मोक्ष न तो योगसे सिद्ध होता है, न सांख्यसे, न कर्मसे और न सगुणोपासनासे ही। वह तो एकमात्र ब्रह्म तथा आत्माके एकत्व-ज्ञानसे ही होता है, अन्य किसी प्रकारसे नहीं।’ ज्ञानसे ही मुक्ति मिलती है। श्रुति भी कहती है—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्ट्यिष्यन्ति मानवाः।  
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

(श्वेताश्वर०उप० ६। २०)

जब मनुष्य अमूर्त तथा व्यापक आकाशको चमड़ेके समान लपेट लेंगे, तब स्वप्रकाश परमात्माको न जानकर भी दुःखका अन्त—मोक्ष हो सकेगा। परमात्माको आत्मत्वेन जाननेसे ही मोक्ष होगा, अन्य कोई मार्ग नहीं है; क्योंकि ‘तत्त्वमसि’ (छा०उ० ६। ८। ७) आदि महावाक्योंमें परमात्मा और जीवको एक ही बतलाया है। श्रुति-तात्पर्य जाननेके लिये उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद तथा उपपत्ति—ये छः लिंग हैं। ‘तत्त्वमसि’ वाक्यका वास्तविक अर्थ क्या है? इसे उपर्युक्त नियमके अनुसार देखना चाहिये। छान्दोग्य उपनिषद्‌में उद्घालक अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं—‘सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्’ (छा०उ० ६। २। १)—‘हे प्रियदर्शन! यह सब संसार सृष्टिके पूर्वकालमें सजातीय-विजातीय तथा स्वगतभेदशून्य एकमात्र सद्-ब्रह्म ही था।’ यह उपक्रम अद्वैत ब्रह्मका है। ‘एतदात्म्यमिदः सर्वम्’ (छा०उ० ६। ८। ७)—‘यह सब आत्मस्वरूप है—इस उपसंहार-वाक्य और उपक्रम-वाक्यकी एकता प्रथम लिंग है। ‘तत्त्वमसि’ (छा०उ० ६। ८। ७ से ६। १३। ३)-पर्यन्त वह सदब्रह्म तुम ही हो, का नौ बार ‘अभ्यास’ हुआ है। रूप आदिसे रहित सदब्रह्म अन्य प्रमाणका विषय नहीं है, यह ‘अपूर्वता’ है। इसका प्रतिपादक वाक्य है—‘अत्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसे’ (छा०उ० ६। ३। २) ‘सौम्य! (लवण

जलमें विद्यमान रहनेपर भी जैसे तुम्हें दिखायी नहीं देता, वैसे ही) वह सत् भी संघातरूप शरीरमें विद्यमान रहते हुए तुम्हें दिखायी नहीं देता। ‘तस्य तावदेव चिरं यावन् विमोक्ष्येऽथ सम्पत्य इति’ (छा०उ० ६। १४। २), ‘उस आचार्यवान् पुरुषको मोक्षमें उतना ही विलम्ब है, जितने कालतक शरीरपात नहीं होता’—यह ‘फल’ है। ‘अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य’ (छा०उ० ६। ३। २) इस जीवात्मरूपसे प्रवेशकर आदि अद्वितीय ज्ञानार्थ ‘अर्थवाद’ है। ‘यथा सोम्यैकेन मृत्यिण्डेन सर्वं मृत्यं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्’ (छा०उ० ६। १। ४) सौम्य! जैसे एक मृत्तिकाके पिण्डद्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है; क्योंकि विकार केवल वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है, सत्य केवल मृत्तिका है’ आदि दृष्टान्त उपपत्ति है। दृष्टान्तोंसे निश्चय होता है कि विकार प्रकृतिसे भिन्न नहीं है। इस प्रकार उपक्रमादि छः लिंगोंसे सभी वेदान्तोंमें अद्वितीय ब्रह्मज्ञान होता है और यह प्रत्यगभिन्न ब्रह्म ही सब वेदान्तोंका तात्पर्य है। मैं ब्रह्म ही हूँ, इस ज्ञानानुभूतिसे मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है—यह मोक्ष है।

आचार्य शंकरने मुमुक्षु मनुष्योंके लिये ज्ञानका प्रतिपादन किया। किंतु जिनमें मुमुक्षुता नहीं है, उनके लिये शास्त्रोंने कर्मोपासना निर्दिष्ट की है। ईश्वरार्थ या निष्कामकर्म करनेसे जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तरके वैषयिक राग-द्वेषात्मक संस्कारोंका प्रक्षालन होता है। अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। तब उसमें मोक्षकी इच्छा उत्पन्न होती है। ईश्वरोपासनासे अन्तःकरणकी चंचलताकी निवृत्ति होती है। तब प्रत्यगभिन्न ब्रह्ममें बुद्धिकी स्थिरता होती है। इस प्रकार मुमुक्षुता उत्पन्न करनेके लिये कर्मोपासना अवश्यकर्तव्य है। पश्चात् ज्ञानोपदेशसे ब्रह्मस्वरूपा मुक्ति प्राप्ति होती है। ‘चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये’ (विवेद०चू०११) ‘कर्म चित्तकी शुद्धिके लिये है, मोक्षके लिये नहीं, आदि आचार्यके वाक्य हैं। इस प्रकार आचार्यने वेदोक्त कर्म-उपासना तथा ज्ञानका समन्वय किया है। शास्त्रार्थ-प्रकाशनद्वारा मानवको सर्वोच्च स्थिति ब्रह्मस्वरूपतक

पहुँचाना उनका उद्देश्य रहा। मानवोंको सचेत करते हुए उन्होंने कहा—

इतः को व्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थं प्रमाद्यति ।  
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥

(विवेकचूडामणि ५)

‘दुर्लभ मानवदेहको प्राप्तकर और उसमें पुरुषत्वको पाकर जो अपने मोक्षमें प्रमाद करता है, उससे अधिक मूर्ख और कौन होगा!’ अतः शरीर रहते ही अपना कल्याण अवश्यमेव करना चाहिये। मोक्ष ब्रह्मस्वरूप है और ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द, अनन्तरूप है। सभी

प्राणियोंका वही आत्मा है।’ आत्मस्वरूप ब्रह्मज्ञान होनेपर इसी जीवनमें ब्रह्मानुभूति होती है। मैं त्रिकालाबाधित सत् हूँ, सबका स्वरूप होनेसे चित् हूँ, आकाशवत् असीम होनेसे अनन्त हूँ और दुःखलेशशून्य होनेसे आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा न कभी जन्म है, न मरण। मैं नित्य, निर्विकार, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप हूँ’, आदि स्वाभाविक अनुभूति होती है’, इसी प्रकार हम आद्य श्रीशंकराचार्यके सदुपदेशानुसार अपने जीवनका निर्माण करें, इसीमें हमारा परम कल्याण है और यही वस्तुतः आचार्यके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है।

प्रेरक-कथा—

## सभीका ईश्वर एक

‘नरहरि! भगवान् विद्वलनाथने प्रसन्न हो मुझे पुत्र दिया। मैं आज उन्हें रत्नजटित कमरपट्टा चढ़ाने आया हूँ। पंढरपुरमें सिवा तुम्हारे कोई उसे गढ़ नहीं सकता। इसलिये उठो, भगवान्की कमरका नाप ले आओ और शीघ्र उसे तैयार कर दो।’—एक साहूकारने आकर नरहरि सुनारसे कहा।

नरहरिने पंढरपुरमें रहकर भी कभी भूलकर विद्वलनाथका दर्शन नहीं किया था। वह परम शैव था। शिवके भजन-पूजनमें सदा अनुरक्त वह भक्त वैष्णवोंके देव विद्वलनाथसे इतना बचता कि बाहर निकलते समय सिर नीचाकर चलता, ताकि धोखेमें विद्वल-मन्दिरका शिखर-दर्शन भी न हो जाय।

नरहरिने मन्दिरमें जाना स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। लाचार हो व्यापारी स्वयं ही जाकर नाप ले आया। कमरपट्टा बना और भगवान्को पहनाया गया तो छोटा होने लगा। फिर नरहरिके पास उसे लाया गया। नरहरिने बड़ी कुशलतासे उसे बड़ा कर दिया। अबकी बार वह अपेक्षामें अधिक बड़ा हो गया।

साहूकार चिन्तित हो उठा—‘क्या सचमुच भगवान् हमपर अप्रसन्न हो गये? क्योंकर वे इसे स्वीकार नहीं करते?’ उसने आकर नरहरिसे बड़ी अनुनय-विनय की। अन्ततः नरहरि मन्दिर चलने और स्वयं नाप लेनेको तैयार हुआ—इस शर्तपर कि मेरी आँखोंपर पट्टी बाँध ले चलो और मैं हाथोंसे टटोलकर नाप ले लूँगा।

आँखोंपर पट्टी बाँधे नरहरि सुनार पकड़कर मन्दिरमें लाया गया। उसने मूर्तिको टटोला तो दशभुज, पंचवदन, भुजंगभूषण, जटाधारी शंकर ईंटपर खड़े मालूम पड़े। अपने आराध्यदेवको पाकर उनके दर्शनसे बचनेकी अपनी बुद्धिपर उसे तरस आया और उसने अत्यन्त अनुतप्त हो आँखोंसे पट्टी खोली। पट्टी खोलते ही पुनः पीताम्बरधारी वनमालीको देख वह सकपकाया और पुनः पट्टी बाँध ली। फिर हाथोंसे टटोला तो वे ही भवानीपति भोलानाथ और पट्टी खोलते ही रुक्मिणीरमण पाण्डुरंग ईंटपर खड़े तथा कटिपर हाथ धरे दिखायी पड़ते।

नरहरि बड़े असमंजसमें पड़ गया। उसे ईश्वरमें भेद-बुद्धि रखनेपर अच्छा पाठ मिल गया। शिवका अनन्य भक्त होनेके कारण उसे अब ईश्वराद्वैतका रहस्य समझते देर नहीं लगी। उसने दीनवाणीसे प्रभुकी प्रार्थना की।

भगवान् प्रसन्न हो उठे। ईश्वरमें भेदबुद्धि नष्ट करना ही उनका लक्ष्य था। उसके सिद्ध हो जानेपर भक्तकी अनन्यताके वशीभूत हो उन्होंने उसकी प्रसन्नताके लिये अपने सिरपर शिवलिंग धारण कर लिया। तबसे पंढरपुरके विद्वलभगवान्के सिरपर आज भी शिवलिंग विराजमान है।

## संत-संस्मरण

( मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन ऋषिकेशमें हुए सत्संगसे )

वृन्दावनमें एक सिद्ध संत थे—पहाड़ी बाबा। लोग इसी नामसे उन्हें जानते थे। अत्यन्त अपरिग्रही स्वभाव। वस्त्रके नामपर दो अचला-लँगोटीमात्र रखते थे। एक बार एक उच्च अधिकारी उनके दर्शनार्थ आया, जिसे अपनी आध्यात्मिकता आदिका भी दम्भ था। उसने पूछा—महाराजजी! मुझे कल्याणमार्गका उपदेश करें। महाराजजी मौन रहे, कुछ बोले नहीं। उसने पुनः प्रार्थना की। महाराजजी फिर चुप रहे। शिष्योंने धीरेसे निवेदन किया कि बड़े अधिकारी हैं, उन्हें उत्तर देना चाहिये। महाराजजी बोल पड़े—‘जितना रुचै, जितना पचै, उतना ही खा। ज्यादासे पेट फट जायगा।’ उपस्थित लोग और आगन्तुक अधिकारी सन्न। सभी धीरेसे विदा हो लिये। कुछ समय बाद सुननेमें आया कि उन अधिकारी महोदयका भ्रष्टाचारके आरोपमें निलम्बन हो गया है। इस विषयमें उनकी छवि जनसामान्यमें भी अच्छी नहीं थी। कुछ लोगोंने उन्हें सलाह दी कि शायद पहाड़ी बाबाके कोपसे ऐसा हो गया होगा, इसलिये उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये। वे आये और बाबाके चरणोंमें लोट गये कि मेरी रक्षा कीजिये। महाराजजीने कहा कि तुमने अपने कल्याणका मार्ग पूछा सो बता दिया था। अब प्रतिज्ञा करो कि अपने सरकारी वेतनके अतिरिक्त कुछ भी स्वीकार नहीं करोगे। उसने हाथ उठाकर

महाराजके सामने प्रतिज्ञा की। महाराजजीने उसे चित्रकूट जाकर कामतानाथजीकी परिक्रमा करने तथा निष्ठापूर्वक प्रतिज्ञापर डटे रहनेका आदेश दिया। सुना गया कि कुछ दिन बाद उसका निलम्बन निरस्त होकर वह अधिकारी पुनः पद-प्रतिष्ठित हो गया।

सन्तोंका चित्त स्वच्छ दर्पणके समान होता है, जिसमें सब साफ-साफ दीखता है, कुछ छिपता नहीं और उनका हृदय नवनीतसे भी कोमल होता है, जो सबके कल्याणके भावसे सदा भरा रहता है।

×                    ×                    ×

एक सज्जन सन्त-दर्शनहेतु वृन्दावन पधारे। एक सन्तके पास आकर उन्होंने जिज्ञासा की—‘महाराज! कुछ बताइये, जिससे हमारा कल्याण हो।’ प्रायः सन्त-महात्माओंके पास जाकर लोग इस प्रकारकी जिज्ञासा करते रहते हैं, यद्यपि उस विषयमें उनकी कोई गम्भीरता नहीं होती। महात्माजीका उत्तर था—‘जो जानते हो, उतना कर लो। तुम्हारे कल्याणके लिये उतना पर्याप्त है।’

वस्तुतः आत्मकल्याणके मार्गपर जानकारीका हमारे देशमें उतना अभाव नहीं है, जितना संकल्पपूर्वक जाने हुएको संकल्पपूर्वक कार्यरूपमें परिणत करनेका है।

—प्रेम

## गोपियोंके स्वर

( श्रीमती करुणा मिश्रा )

फिर घुमड़ ये मेघ छाये श्याम न आये।  
गोकुलसे ये उठी बदरिया बरसाने बरसा बरसाये।  
श्याम मिलन को आकुल राधा राहमें नैना बिछाये।

श्याम न आये॥ फिर० ॥

नेहकीं सूनी डगरिया प्रीति की रीती गगरिया।

तुमविन मोहन ब्रजमें हमको, कुछन भाये, कुछन भाये।

श्याम न आये॥ फिर० ॥

उस अगमका प्यार पाने प्रिय मिलनका राग गाने।

साज अन्तरने सजाये श्याम न आये॥ फिर० ॥

उर बीणाके तार झँकूत कर मधुर फिर स्नेह लाये।

मुरलीके वे स्वर मनोहर हमरे तन मनमें समाये।

श्याम न आये॥ फिर० ॥

हम तो तुम्हरे प्रेम की घनश्याम वो घायल हिरनिया।

कस्तुरी के मृग की भाँति मनमें हो, मन चैन न पाये।

श्याम न आये॥ फिर० ॥

न कोई पाती, न खबरिया जब से गये मथुरा नगरिया।

हमरी प्रीतिको तो कान्हा लगी नजर पलपल नजराये।

श्याम न आये॥ फिर० ॥

# अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु

( श्रीहरी मोहनजी )

महात्मा गाँधीका कहना था कि 'मुझे ऐसा कोई अवसर याद नहीं आता जब मैंने उन्हें (ईश्वर)-को सच्चे मनसे पुकारा हो और उन्होंने न सुना हो।'

श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्र-मोक्षका एक प्रसंग है। सरोवरमें ग्राह गजराजको खींचकर ले जा रहा था। साथके हाथी उसकी कोई मदद नहीं कर पाये और उसका भी बल काम नहीं कर रहा था। तब उसने असहाय होकर भगवान्को पुकारा। पूर्वजन्ममें सीखकर कण्ठस्थ किये हुए स्तोत्रका पाठ करने लगा। उसकी पुकार सुनकर श्रीहरि (भगवान्) प्रकट हो गये और करुणावश गजराजको ग्राहके चंगुलसे बचा लिया।

गीताप्रेस गोरखपुरके द्वारा वही स्तुति गजेन्द्र-मोक्षके नामसे छोटी-सी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित है। उसके आरम्भमें 'परिचय'में श्रीहनुमानप्रसाद पोद्वारजीने लिखा है—महामना मालवीयजी महाराज कहा करते थे कि गजेन्द्रकृत इस स्तवनका आर्त-भावसे पाठ करनेपर लौकिक, पारमार्थिक महान् संकटों और विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है...।

तात्पर्य हुआ कि जिस प्रकार गजराजने भगवान्को पुकारा था, उसी भाँति कोई भी पुकारे तो वह सुनते हैं और उसका उद्धार करते हैं।

महाभारत ग्रन्थमें धृतराष्ट्रकी राजसभामें उनके पुत्र दुःशासनद्वारा द्रौपदीको निर्वस्त्र करनेके प्रयासका प्रसंग है। द्रौपदी पहले अपने पतियोंकी ओर फिर पितामह और अन्य गुरुजनोंकी ओर आशाभरी दृष्टिसे देखा, पर जब किसीने भी उनकी लाज बचानेहेतु कोई उपक्रम नहीं किया तब उन्होंने असमर्थ होकर द्वारिकाधीश (भगवान् कृष्ण)-को आर्त-भावसे पुकारा तो भगवान् उनका चीर अन्तहीन बढ़ाते ही गये। दुःशासन थक्कर बैठ गया और द्रौपदीको भगवान्ने निर्वस्त्र होनेसे बचाकर उनकी लाज रखी।

इन दृष्टान्तोंसे यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर

पुकारनेपर ही सुनते हैं अन्यथा नहीं? यदि ऐसा होता तो उन्हें अहैतुकी कृपा करनेवाला कैसे कह सकते थे। वह तो अतिशय दयालु हैं और दया करनेमें आलस्य नहीं करते (गजेन्द्र-मोक्षसे)। स्वामी कृष्णानन्दजीने एक अवसरपर कहा था—'He protects us all the time—we must learn to see his grace in every event.' (वह निरन्तर हमारी रक्षा करते रहते हैं—हमें हर घटनामें उनकी कृपालुताका दर्शन करना सीखना चाहिये)।

यह उनका स्वयंका अनुभव था और अन्य अनेक लोगोंका भी ऐसा ही अनुभव है। जब राणाने मीराबाईके पास जहरीला सर्प और फिर विषका प्याला भेजा तो उनके आराध्य गिरधर गोपालने स्वयं उन्हें फूलोंकी माला और अमृतमें परिवर्तित कर दिया।

हिरण्यकशिपुने जब अपने पुत्र प्रह्लादको पहाड़से नीचे फेंकवाया, आगमें जलानेका प्रयास किया तब उन्होंने (प्रह्लाद) भगवान्को पुकारा नहीं, बस उनके ध्यानमें मग्न रहे। प्रभुने अपने-आप ही अपने भक्त, अपने शरणागतकी रक्षा की।

ब्रह्मनिष्ठ संत स्वामी श्रीशरणानन्दजीके साधना-कालमें उनके सदगुरुने उनसे कहा था कि 'ठहरी हुई बुद्धिमें श्रुतियोंका ज्ञान स्वतः प्रकट होता है।' स्वामीजीके जीवनका एक प्रसंग है—पटनामें नेशनल साइंस कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। स्वामीजीके प्रेमियोंने उन्हें भी आमन्त्रित किया। फिर कहा गया कि वह अधिवेशनको सम्बोधित करेंगे। जब वह मंचपर पहुँचे तो अधिवेशनमें भाग लेनेवालोंमेंसे किसीने कहा कि आप परमाणु-विज्ञानपर कुछ बताइये। प्रश्नकर्ताने चाहे जिस भी भावसे पूछा हो, परंतु स्वामीजी आधा घण्टातक विशेषज्ञकी भाँति परमाणु-विज्ञानपर बोलते रहे। जब वह चलने लगे तो एक भक्तने पूछा कि आप तो केवल कक्षा चार या पाँचतक पढ़े थे, आपने यह सब कैसे बोला? इसपर

उन्होंने कहा कि जिसने साइंस बनायी है, उसीने मुझे बता दिया। सप्ताहमें अपटूडेट आना असम्भव ही था।

इसका एक पहलू तो यह है कि ठहरी हुई बुद्धिमें परमाणु-विज्ञानका ज्ञान स्वतः प्रकट हो गया। दूसरा पहलू यह है कि उनके शरण्य (प्रभु)-ने अपने शरणागतकी लाज रखनेके लिये स्वयं ही उनकी वाणीके माध्यमसे बोल दिया। स्वामीजीकी जिस कोटिकी शरणागति थी—सम्पूर्ण समर्पण (total surrender) उसमें उनके द्वारा प्रभुसे मददके लिये कहना—पुकार लगाना, सोचा ही नहीं जा सकता। अतः यही मानना पड़ेगा कि प्रभु अपनी अहैतुकी कृपासे अपनी ही ओरसे स्वयं ही उनके मुखसे आधे घण्टेतक बोलते रहे।

परमहंस योगानन्दजीके जीवनका भी एक ऐसा ही प्रसंग है। जब वह जहाजसे विदेश जा रहे थे तो रास्तेमें उनसे सह-यात्रियोंको सम्बोधित करनेको कहा गया, परंतु वह एक शब्द नहीं बोल सके। अपने केबिनमें जाकर अपने गुरुको याद करके खूब रोये। अगले दिन वह पाँच मिनटके बजाय पैंतालिस मिनटक सुन्दर अंग्रेजी भाषामें बोलते रहे और श्रोता शान्त होकर सुनते रहे। यदि रोनेको पुकार माना जाय तो दूसरी बात होगी अन्यथा उनके गुरुने (सद्गुरु, ईश्वरका ही रूप तो होता है) या प्रभुने स्वयं अपने बालककी लाज रखनेके लिये उनके मुखसे बोला।

ऐसा ही अनुभव एक अन्य व्यक्तिका है। किशोरावस्थामें इण्टर साइंसका छात्र था। पढ़ाई ठीकसे न करनेके कारण क्लासमें पिछड़ गया था। एक दिन ट्रिग्नामेट्रीके क्लासमें बोर्डपर एक प्रश्न हल करनेको कहा गया। उसकी और उसके बाद कुछ और छात्र जिनसे कहा गया, की असफलतापर टीचर बहुत रुष्ट हुए और चेतावनी दी कि यदि एक सप्ताहमें क्लासमें अपटूडेट नहीं आये तो मैथेमेटिक्स छोड़कर आर्ट्सका विषय ज्वाइन करना पड़ेगा। वह किशोर बहुत परेशान और भयभीत हो गया कि घरपर उसकी बड़ी भृत हो जायगी। मैथेमेटिक्सके एलजेब्रा, कोआर्डिनेट ज्योमेट्री, ट्रिग्नामेट्री आदि अनेक उप-विषय थे। उन सबमें एक

कुछ ही दिनों पश्चात् टीचरने ब्लैक बोर्डपर कोआर्डिनेट ज्योमेट्रीका एक प्रश्न लिख दिया और बारी-बारीसे उन सबसे अगला स्टेप पूछने लगे, जिनको चेतावनी दी थी। उस किशोरने इस आशंकासे कि कहीं उससे न पूछ दिया जाय, डेस्कमें मुँह छिपानेका प्रयास किया, तबतक उसे अपना नाम सुनायी पड़ा—वह यन्त्रवत् खड़ा हुआ और अगला स्टेप बोल दिया, जो बिलकुल सही था। क्लासके अन्तमें सबसे तेज लड़कोंने पूछा कि तुमने कैसे बता दिया, यह तो हमें भी नहीं मालूम था। उसने कहा कि उसे भी नहीं मालूम कि उसने कैसे बताया।

कदाचित् घबड़ाहटके कारण बुद्धि ठहर गयी थी और उसी ठहरी हुई बुद्धिमें स्वयमेव उत्तर आ गया, परंतु इसके पीछे प्रभुकी अहैतुकी कृपा और अतिशय दयालुता ही मानना चाहिये कि उन्होंने उसे फजीहतसे बचानेके लिये उसकी वाणीमें स्वयं उत्तर दे दिया। यदि ठहरी हुई बुद्धिका योगदान कहा जाय तब भी उन्हींकी कृपालुता तो थी, जिसने उसकी बुद्धिको ठहरा दिया। उसे तो बुद्धि ठहरनेका उस समय अता-पता भी नहीं था। सब कुछ अपने-आप ही हो गया।

वैसे ठहरी हुई बुद्धिमें ज्ञानका स्वतः प्रकट होना और उस अनन्त ज्ञानके भण्डार प्रभुद्वारा किसीके मुखसे स्वयं बोलना तत्त्वतः एक ही बात है। जब हमारी सोचनेकी प्रक्रिया बन्द होगी, तभी तो उन्हें बोलनेका या ज्ञान देनेका अवसर मिलेगा। यह एक प्रकारसे शरणागति ही है। जब अपनी विचार-शक्तिका भरोसा टूट जाता है तब वे परम कृपालु स्थिति सँभाल लेते हैं। उनके लिये सब कुछ बहुत सहज है, हम उनकी शरणमें जायें तो! वह तो जब हमें ज्ञानके प्रकाशकी आवश्यकता होती है तब ज्ञान देते हैं और जब हम मुखर होते हैं, तब वे प्लेबैक सिंगरका रोल अदा करते हैं।

कैसी विलक्षणता है कि—

(१) उनके बनाये नियमके अनुसार ठहरी हुई बुद्धिमें हम उन परम चैतन्यसे सीधे जुड़ जाते हैं।

(२) कैसे विशाल और विचित्र कम्प्यूटर हैं कि न website (वेबसाइट)-की जरूरत और न connectivity (जुड़ने)-की समस्या। Instant connection (तत्काल जुड़ जाना) होता है।

(३) उत्तरके लिये search (खोज) भी नहीं करना पड़ता। हमें question (प्रश्न) feed (भरना) भी नहीं करना पड़ता। प्रासंगिक (relevant) उत्तर तत्काल (instantly) आ जाता है। यह भी उनकी कृपालुता ही तो है कि वह प्रासंगिक (relevant) ही उत्तर आता है—यह नहीं होता कि उसके बजाय अपनी भक्तिका रहस्य बताने लगें।

(४) यह भी नहीं होता कि वह कहें कि अभी मेरा मन (mood) नहीं है, तुम अपनी समस्या स्वयं झेलो। उन्हें इसीलिये दया करनेमें आलस्य नहीं करनेवाला कहा गया है।

पूर्व प्रस्तरोंमें उन दृष्टान्तोंको प्रस्तुत मात्र यह कहनेके लिये किया गया है कि ऐसा नहीं है कि प्रभु केवल पुकारनेपर ही कृपा करते हैं बल्कि वे अपनी कृपालुताके वशमें होकर स्वयमेव ही अपने बच्चोंका हित साधन करते रहते हैं।

उनकी करुणा, कृपालुता, महिमाका कहाँतक बखान किया जाय। पुरुषोत्तमदास जलोटाजीने एक भजन गाया है, जिसकी मुख्य पंक्ति (lead) है—  
प्रबल प्रेम के पाले पड़कर प्रभु को नियम बदलते देखा।  
अपना मान टले टल जाये, भक्त का मान न टलते देखा॥

ऐसे प्रभुकी शरणागति न अपनाकर इधर-उधर अन्य विश्वासोंमें भटकते रहनेसे बढ़कर हम लोगोंका और क्या दुर्भाग्य हो सकता है? यह तो मनुष्य-जन्म पाकर उसको गँवानेके समान है।

अतः जिसने उनके प्रति अपनेको पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया, उनकी शरणागति अपना लिया, वह तो निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। वह उनसे कोई अपेक्षा या चाह नहीं रखता, इसलिये किसी भी परिस्थितिमें उसका उन्हें अपने लिये सहायता, कृपाहेतु पुकारनेका प्रश्न ही नहीं होता। वह तो अपनेको पूर्णतया उनको सौंप देता

है और जो भी होता है, उसीमें प्रसन्न और आनन्दित रहता है।

परंतु उन्हें पुकारना भी ठीक ही है। किसी संकटकी घड़ीमें हम उन परम कृपालु सर्वसामर्थ्यवान् अपने परम हितैषीको ही तो पुकारेंगे, परंतु अन्य विश्वास, धनका, बलका या बुद्धिका विश्वास रखते हुए प्रभुको पुकारनेका कोई अर्थ नहीं होगा। अनेक विश्वास एक विश्वासमें और अनेक सम्बन्ध एक सम्बन्धमें विलीन कर देनेपर ही उन्हें पुकारना अर्थपूर्ण होता है। जब द्रौपदीने सबसे निराश होकर, हाथसे और दाँतसे भी चीरकी पकड़ छोड़ दी और असमर्थ भावसे उन्हें पुकारा तब कृष्ण भगवान् ने उनकी लाज रख ली।

हम उन्हें पुकारते ही तब हैं जब अपनी सामर्थ्यसे हार जाते हैं और अपनेको नितान्त असमर्थ अनुभव करते हैं। मीराजीने और प्रह्लादने इसका झंझट ही नहीं रखा। वे पूर्णरूपेण उनके आश्रित हो गये और उनकी भक्ति और प्रेममें मग्न रहे। अपनी कोई इच्छा/चाह ही नहीं रही, सिवा उनके प्रेमकी।

परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निष्क्रिय हो जायें। हमें उन्हीं (प्रभु)-के आश्रित और शरणागत होकर अपना कर्तव्य-कर्म जो विवेक-विरोधी या अपनी सामर्थ्य-विरोधी नहीं है, को करना ही है। कर्तव्य होता ही वह है, जो विवेक-विरोधी और सामर्थ्य-विरोधी न हो। कार्यमें सफलतामें विलम्ब होनेपर हम अधीर और उद्विग्न होते हैं, जिसके लिये वास्तवमें कोई औचित्य नहीं है। दृढ़ विश्वासके साथ अपने कर्ममें लगे रहें। ऐसे अनेक अनुभूत दृष्टान्त हैं, जिन्हें लिखनेपर यह गाथा बहुत लम्बी हो जायगी। इतना ही कहना पर्याप्त और विश्वासको सुदृढ़ करनेवाला होगा कि जिस विलम्बको लेकर हम परेशान होते रहे थे, वह कार्यको सफल बनानेहेतु प्रभुकी सुविचारित योजना थी। ऐसे परम हितैषी, परम कृपालु, परम उदार प्रभुके हम आश्रित हो जायें या आर्तभावसे पुकारें, वह तत्त्वतः उनके प्रति विश्वास ही है और बस आनन्द ही आनन्द है।

संत-चरित—

## श्रीभास्करराय ( भासुरानन्दनाथ )

( श्री 'मातृशरण' )

सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें दक्षिणदेशमें  
एक अद्भुत सिद्धात्मा हो गये हैं, जिन्होंने उस  
समय लुप्तप्राय वैदिक प्रकाश और हिन्दुत्वका  
पुनरुद्धारकर राष्ट्रके नव निर्माणमें भारी सहायता दी।  
दक्षिणदेश विद्वत्ता और साधनाके लिये प्रसिद्ध है।  
गम्भीरराय नामक एक विद्वान् भक्त उन दिनों दूर-  
दूरतक प्रसिद्ध थे। विजयनगर राज्यके एक राजाने  
महाभारतके पाण्डित्यपूर्ण प्रवचनसे प्रसन्न होकर इनको  
'भारती' की उपाधिसे विभूषित किया था। इनकी  
विदुषी और धर्मात्मा एवं पतिव्रता पत्नीसे अद्भुतकर्मी  
भास्कररायका शुभजन्म भागामें उच्च ब्राह्मणकुलमें  
हुआ। योग्य माता-पिताकी सुयोग्य सन्तान। बचपनसे  
ही भास्करराय अद्भुत प्रतिभाका परिचय देने लगे।  
पाँच वर्षकी अवस्थामें इनका उपनयन-संस्कार काशीमें  
किया गया और अपने वेदारम्भगुरु 'श्रीनरसिंहाध्वरि'से  
इन्होंने बहुत ही कम समय और अवस्थामें १८  
विद्याएँ पढ़कर लोगोंको चकित कर दिया। जन्मसे  
ही धर्म और ईश्वरके अभिमुख होने और फिर अपने  
पिताद्वारा सरस्वतीपूजामें दीक्षित होनेके कारण  
श्रीभास्करराय दिनों-दिन भजनभावमें अधिकाधिक समय  
देकर मस्त रहने लगे। बालक कहीं संन्यासी न हो  
जाय, इस डरसे माता-पिताने शीघ्र ही इनके विवाहकी  
ठानी और 'आनन्दी' नामक विदुषी एवं सद्गुणविशिष्टा  
कन्यासे विवाह कर दिया, जिसके गर्भसे पाण्डुरंग  
नामक एक चमत्कारी पुत्रका जन्म हुआ।  
श्रीभास्कररायका प्रतिभाशाली मस्तिष्क नरसिंहाध्वरिसे  
प्राप्त १८ विद्याओंसे सीमित होनेवाला न था। ये  
आगे बढ़े और श्रीगंगाधर वाजपेयीसे इन्होंने तर्कशास्त्रपर  
पूर्ण अधिकार प्राप्त किया, जिसके बलपर इन्हें बड़े-  
बड़े विद्वानोंपर अद्वितीय विजय हाथ लगी। ये सब  
विषय इनके भक्तिप्रधान हृदयको नीरस मस्तिष्कके  
निरर्थक खेल जान पड़े और इसके परिणामस्वरूप  
श्रीशिवदत्तजी शक्लदारा यह पर्णाभिषेककी तात्रिक

दीक्षामें दीक्षित हुए और श्रीविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका रसाप्लुत अनुग्रह प्राप्तकर निज पत्नीको भी अपने ही हाथों श्रीविद्यामें दीक्षित कर दिया। ‘आनन्दी’ अब ‘पद्मावत्यम्बिका’ हो गयी, पत्नी नहीं साक्षात् जगन्माता! श्रीनृसिंहानन्दनाथने फिर इनको भासुरानन्दनाथ नामसे परमा दीक्षामें दीक्षित किया।

सब साधनाओंमें सबसे अधिक कठिन श्रीविद्या  
महात्रिपुरसुन्दरी और उनके स्वरूप 'श्रीचक्र'की साधनामें  
पूर्ण सिद्ध होनेपर दिव्यालोकसे अधिकारियोंको उपकृत  
करने और जो भूले-भटके और विकर्मग्रस्त हो गये  
थे, उनको जगाने और सत्पथपर लानेके लिये इन्होंने  
कई लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और मार्गमें अनेक  
प्रसिद्ध महात्माओं और धर्माचार्योंको शास्त्रार्थमें हराया।  
यह किसीके सिरपर अपने सत्प्रकाश और सिद्धान्तोंको  
जबरदस्ती लादते न थे बल्कि नम्रता और  
विनयशीलताके साथ निज अनुभूतियोंको जनताके सामने  
रख देते थे, कट्टरपन्थियोंके विरोधको अपने मधुर  
भाषणसे सप्रेम जीत लेते थे। इस प्रकार गुजरात  
प्रदेशमें वल्लभ-सम्प्रदायाचार्य और माध्वसम्प्रदायके  
कई पूजित नेताओंको हराकर काशीमें आकर इन्होंने  
सोमयाग किया, जिसके अद्भुत प्रभावसे बहुत-से  
अधिकारीलोग उपकृत होकर इनके सत्प्रकाशमें दीक्षित  
हो गये। ये जहाँ भी जाते थे, श्रीदेवीभागवत, रामायणके  
अद्भुत काण्ड और अर्थर्ववेदका रहस्य खोलते जाते  
थे, क्योंकि अर्थर्ववेदके गुप्त रहस्योंको लोग भूल-  
भाल रहे थे और मनमाने ढंगसे तामसाचारमें प्रवृत्त  
हो रहे थे। मानवजातिके वास्तविक कल्याणके लिये  
श्रीभास्करराय अर्थर्ववेदको अन्तिम और पूर्ण प्रकाश  
मानते थे। इन्होंने अर्थर्ववेदपर एक रहस्यटीका लिखी  
थी और इन्हींके सत्प्रयत्नोंसे अर्थर्ववेदके गूढ़ रहस्य  
फिर जनताके सामने खुल पाये। आवश्यक स्थानोंपर  
भ्रमण करके अन्तमें ये चोलपटेशमें अपने तर्कगरु

श्रीगंगाधर वाजपेयीके निकट ही एक स्थानपर रहने लगे, यह स्थान इनको तंजौरके महाराष्ट्र राजासे दानमें मिला था, इसका नाम भास्कररायपुरम् रखा गया।

### चमत्कार

सिद्ध गुरु श्रीभास्कररायके सम्बन्धमें अनेकों चमत्कार प्रसिद्ध हैं। ये श्रीविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके अनन्य भक्त और कृपापात्र थे। कहते हैं, भगवती त्रिपुरसुन्दरीसे यह हर घड़ी युक्त रहते थे और शास्त्रार्थमें उद्भट विद्वानोंपर विजय प्राप्त करानेमें भगवती ही इनकी सहायता करती थीं। सिद्धि प्राप्त होनेपर यह सब सम्प्रदायोंके इष्टदेवों और आचारविधानोंको सत्य और प्रयोजनीय मानते थे और सबमें एक ही परमतत्त्वका दर्शन करते थे, जिसके कारण सभी मतवादी इनकी पूजा करते थे। फिर भी—अद्वैत सिद्धान्तको परम अनुभूति मानते हुए भी—यह तान्त्रिक शुद्ध प्रक्रियाको अधिक महत्त्व देते थे और जगत्को मिथ्या या झूठा समझनेके स्थानपर विश्वको परमचैतन्यका जाग्रत् एवं सतत विलास मानते थे, निष्क्रिय निर्गुण ब्रह्मके बजाय रसमयी साक्षात् भगवतीकी उपासनाको मुख्य मानते थे और कहते थे कि माता भगवतीकी कृपासे ही अचल ब्रह्मके रहस्य जाने जाते हैं और परमतत्त्वका उद्घाटन अपने सत्स्वरूपमें हो सकता है। वे सब सम्प्रदायोंके सीमित वादोंसे बहुत ऊपर थे, किंतु ज्ञागङ्गा करनेवाला अपूर्ण मन कब सन्तुष्ट होनेवाला था। लिहाजा शब्दोंका चक्कर काटते रहनेवाले वाचिक ज्ञानियोंने इनको तंग करना आरम्भ किया और वामाचारके तान्त्रिक साधनपर आक्षेप करके इनको गिराना चाहा। काशीकी विद्वन्मण्डली एक तरफ और श्रीभास्करराय अकेले एक तरफ। इन्होंने बड़े प्रेमसे विद्वन्मण्डलीको तान्त्रिक विधानसे किये जानेवाले एक महायागमें निमन्त्रित किया। महायागकी विस्तृत और चमत्कृतिपूर्ण विधि-प्रक्रियाको देखकर विद्वन्मण्डली चकित रह गयी और श्रीभास्कररायके आध्यात्मिक प्रभावसे सब प्रभावित हो गये। किंतु हिम्मत करके एक विद्वान् मन्त्रशास्त्रसम्बन्धी कुछ प्रश्न करनेके लिये आगे

बढ़ा कि अकस्मात् कुंकुमानन्द स्वामी नामके एक परम सिद्ध महात्मा प्रकट हो गये और प्रश्नकर्ताको पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कर दिया, परमसिद्ध कुंकुमने देवी-अभिषिक्त जलको विद्वानोंकी आँखोंसे छुआ दिया और उस दिव्य जलके लगते ही सबके नेत्रोंसे तमस् और अज्ञानके आवरण हट गये और सबने साफ-साफ भगवतीको श्रीभास्कररायजीके कन्धोंपर आसीन होकर प्रश्नोत्तर देते हुए देखा। विद्वन्मण्डली लज्जित होकर विदा हो गयी।

श्रीभास्कररायको न्यासराज ‘षोढान्यास’ अच्छी तरह सिद्ध था, जिसके फलस्वरूप वह किसीको झुककर नमस्कार न करनेके लिये बाध्य थे; क्योंकि झुककर नमन करनेसे नमनकी जानेवाली वस्तु फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती थी। एक समयकी बात है कि श्रीभास्करराय दहलीजमें बैठे हुए शिष्योंको पढ़ा रहे थे कि एक विद्वान् अद्वैतवादी संन्यासी उधरसे होकर पास ही एक मन्दिरमें चले गये। श्रीभास्करराय भी शामको एक कार्यसे उसी मन्दिरमें गये, किंतु उन्होंने पूज्य संन्यासीको नमस्कार नहीं किया। इसपर संन्यासी बिगड़ गये और इस अशिष्ट व्यवहारका कारण पूछा। श्रीभास्कररायने अत्यन्त विनम्रतासे उत्तर दिया कि रिवाजी नमस्कार करनेसे आपकी बड़ी भारी हानि होती, इस कारण नमन नहीं किया गया। संन्यासीके प्रमाण माँगनेपर उनके कमण्डलु और खड़ाऊँ नमस्कारके लिये मन्दिरके चबूतरेपर रख दिये गये। श्रीभास्करराय दोनों हाथ जोड़कर कुछ झुके ही थे कि दोनों खड़ाऊँ और कमण्डलुके हजारों टुकड़े फटकर इधर-उधर बिखर गये। संन्यासी श्रीभास्कररायके अद्भुत प्रभाव और महत्ताके आगे झुक गये।

श्रीभास्कररायकी दिव्य दृष्टिमें भविष्यकाल कुछ दूरका समय न था, होनेवाली घटनाओंको वे बहुत पहले ही अपने अन्तर्ज्ञानमें उतार लेते थे। अपने आगे आनेवाले किसी संन्यासी आदि पूज्य व्यक्तिकी बाबत पहलेसे ही जानकर यह अन्दर आँगनमें इस प्रयोजनसे चले जाते थे कि षोढान्यासके कारण आदरणीय व्यक्तिको नमस्कार

न करनेसे प्रत्यक्षरूपसे लोकमें शिष्टाचारकी हानि न होने पाये। इसके अतिरिक्त इन्होंने समय-समयपर बहुत-सी चमत्कारिक बातें कीं, जिनमें सबसे अधिक चमत्कार, मेरे विचारसे प्राचीन साहित्यका पुनरुद्धार और नवीन साहित्यका निर्माण करना है।

### साहित्य-प्रकाश

धर्मसम्बन्धी वेद, वेदान्त, स्मृति, व्याकरण आदि किसी एक ही विषयमें आबद्ध न होकर सर्वतोमुखीभावसे साहित्यके सभी अंगोंपर श्रीभास्कररायने एक साथ प्रकाश डाला—वेद, वेदान्त, मीमांसा, व्याकरण, न्याय, छन्द, ज्योतिष, काव्य, स्मृति, स्तोत्र, मन्त्रशास्त्र और सर्वप्रिय तन्त्र। टीका, भाष्य, स्वतन्त्र रचना, कुल मिलाकर पैतालीस ग्रन्थ इस महापुरुषने निर्माण किये। सभी विषयोंपर और फिर इतनी अधिक संख्यामें अधिकारपूर्वक साहित्यका निर्माण शायद ही किसीने किया होगा।

श्रीभास्कररायके शिष्य तो अनेक थे, किंतु प्रमुख अनन्य भक्त थे श्रीउमानन्दनाथ। इन्होंने अपने गुरुदेवकी

प्रामाणिक जीवनी तथा मन्त्र, तन्त्रशास्त्रपर टीका आदि रूपसे सुन्दर ग्रन्थोंकी रचना की है।

तन्त्रशास्त्रके प्रति लोग जो नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और घृणाका भाव प्रदर्शित करते हैं, उसका सौकृतिक, सन्तोषप्रद समाधान श्रीश्रीभासुरानन्दनाथजीकी तपःसाध्य अनुभूतियोंने अच्छी तरह कर दिया है। तन्त्रके माने हैं व्यवस्था, नियम, समग्रता और दृढ़ता। प्रत्येक कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये इन बातोंकी अनिवार्यता है ही। देशकी वर्तमान अधोगतिका मुख्य कारण लोगोंका तन्त्रविज्ञानको भूल बैठना है।

काफी आयुका भोग लेकर बड़ी उमरमें उक्त महापुरुषने स्वेच्छासे मध्यार्जुनक्षेत्र (वर्तमान—तिरुवित्तैमरुतूर) -में भौतिक देह त्यागकर नित्यधाममें आरोहण किया। आरोहण करनेसे पहले देशके विभिन्न स्थानोंपर अनेक मन्दिरों, पाठशालाओं तथा चक्रपूजास्थलोंका जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण किया, जिससे हिन्दूधर्म फिरसे हरा-भरा हो गया। इस कार्यमें इनकी सहधर्मिणीका अपूर्व सहयोग रहा।

### संतोंका चरित्र

साधु चरित सुभ चरित कपास् । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥  
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥  
मुद मंगलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ॥  
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ॥

संतोंका चरित्र कपासके चरित्र (जीवन)-के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपासकी डोडी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसलिये वह विशद है, और कपासमें गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संतका चरित्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) [जैसे कपासका धागा सूईके किये हुए छेदको अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोड़े जाने, काते जाने और बुने जानेका कष्ट सहकर भी वस्त्रके रूपमें परिणत होकर दूसरोंके गोपनीय स्थानोंको ढकता है, उसी प्रकार] संत स्वयं दुःख सहकर दूसरोंके छिरों (दोषों)-को ढकते हैं, जिसके कारण उन्होंने जगत्‌में वन्दनीय यश प्राप्त किया है। संतोंका समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत्‌में चलता-फिरता तीरथराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराजमें) रामभक्तिरूपी गंगाजीकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वतीजी हैं। [श्रीरामचरितमानस]

## आतिथेयी

( पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय )

गोभक्ति-कथा—

एक दिन मेरे मनमें राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरी देवीके दर्शनकी लालसा इतनी प्रबलरूपमें जगी कि पत्नीके मना करनेपर भी मैं नहीं रुक सका। मेरे लड़केने भी कहा— पिताजी ! सिद्धेश्वरी देवी बहुत दूर हैं, जंगली एवं पहाड़ी रास्ता है। कोई मोटरका साधन नहीं है। आपका शरीर वृद्ध है, फिर आपकी इच्छा। एक-दो दिनमें पहुँचोगे वहाँ। मैंने किसीकी बात नहीं मानी। थैला तैयार करके चल पड़ा। जाते-जाते हमारे बेटेने कहा—पिताजी ! रास्तेमें एक गाँव मिलेगा। गाँव नहीं कस्बा है। बारहवीं कक्षातक स्कूल है, थाना है, अच्छा है। नाम है वनगाँव। वहाँपर हमारे पूर्व प्राचार्यका स्थानान्तरण हो गया है। मैं उनके पास लिपिक रहा हूँ। आप रातको उनके बंगलेपर रुक जाना। सुबह नहा-धोकर, नास्ता करके फिर आगेकी यात्रा करना। उनका नाम सत्यदेव त्रिवेदी है, पर उन्हें एस० डी० त्रिवेदी कहते हैं। जाड़ेका मौसम है। अधिक सामान लेकर जा सकते नहीं। वहाँ सब व्यवस्था हो जायगी। मेरी पत्नीने कहा—मैं नाश्ता बनाये देती हूँ, थोड़े रुक जाओ। मैं यह नहीं जानती थी कि आप आज ही चल देंगे, पर मैं नहीं रुका। पत्नीसे कह दिया प्राचार्यजीके यहाँ रुकना है। वहीं भोजन-प्रसाद कर लूँगा और झटकेसे चल दिया। दिनभर चलते-चलते इतना थक गया कि आगे एक कदम चला नहीं जा रहा था। रास्तेमें जो भी मिलता उससे पूछता वनगाँव कितनी दूर है ? लोग उत्तर देते—बस, यहीं आगे थोड़ी दूर। शाम हो गयी, अन्धकारके सागरमें सारा वनप्रान्त डूबा जा रहा था। मैं वनगाँव त्रिवेदीजीके नामका जप करता, जैसे-तैसे बढ़ा जा रहा था। अब रास्ता भी साफ-साफ नहीं दिख रहा था। इतनेमें टन-टनकी आवाज सुनायी दी, आगे गया तो देखा एक वृद्ध अपनी गायको लिये अपने खेतसे घरको जा रहे हैं। खूब चरकर पुष्ट गाय मध्यम गतिसे चल रही थी। उसकी घण्टीका स्वर तालमें बज रहा था। वृद्धने मुझे देखा तो हाथ जोड़कर राम-राम किया, फिर पूछा—आप कहाँसे आ रहे हैं ? मैंने

कहा—मैं भवानीपुराका रहनेवाला हूँ। सिद्धेश्वरीके दर्शन करने जा रहा हूँ। रातको यहीं वनगाँवमें रुकूँगा, सुबह चला जाऊँगा।

वृद्ध किसानने हाथ जोड़कर अपने घर रुकनेका आग्रह किया। साथ ही कहा—मैं छोटी जातिका हूँ। गरीब किसान हूँ, पर आपकी सब व्यवस्था बना दूँगा। आज रात मेरी झोपड़ीमें ही विश्राम करें तो मेरा बड़ा भाग्य होगा। मैंने कहा मैं यहाँके प्राचार्य एस०डी० त्रिवेदीके यहाँ रुकूँगा। प्राचार्य बड़े स्कूलके बड़े अधिकारी हैं—यह सोचकर वृद्धने अपनी अयोग्यता समझ हाथ जोड़ लिये। फिर भी उसने कहा मेरा घर तो गाँवके इसी छोरपर है, पर स्कूल तो गाँवके दूसरे छोरपर सरकारी क्वार्टरसे आगे है।

सुविधाकी आशासे मैं बढ़ता चला गया। शायद रातके सात-आठ बज रहे होंगे। मैं पूछता-पूछता चला जा रहा था। बस्ती प्रायः समाप्त हो गयी थी। उसके आगे सरकारी क्वार्टर थे। रातको नामपट्टी तो दिख नहीं रही थी। प्रत्येक क्वार्टरमें पूछता-पूछता आगे त्रिवेदीजीके क्वार्टरके सामने पहुँच गया।

मैंने कहा मैं महादेव उपाध्याय हूँ। भवानीपुरासे आ रहा हूँ। मैं आपके यहाँ…। मेरा वाक्य पूरा नहीं हो पाया कि वे तपाकसे बोले—यह कोई होटल या धर्मशाला नहीं है, समझे। आप कहाँसे आ रहे हैं, कौन हैं, मुझे इससे क्या मतलब ? नगर भवनमें चले जाइये या किसी होटलमें। यहाँ कोई जगह नहीं है। जाइये, आप जाइये। मैंने कहा रातमें कहाँ जाऊँ ? रात हो गयी है। प्राचार्यजीने कहा—हाँ-हाँ, रात हो गयी है, तो मैं क्या करूँ ? क्या रात मैंने कर दी ? आप जाइये। मैंने पूछा नगर भवन किधर है, उन्होंने अपने चपरासीसे कहा, इनको नगर भवनका रास्ता बता दो, जाओ। वह क्वार्टरकी चार दीवारीसे निकला और थोड़ी दूर जाकर बोला—सीधे चले जाओ, फिर दाहिनी ओर मुड़ना, फिर बायीं ओर मुड़कर सीधे चले जाना। आगे किसीसे पूछ

लेना। मेरा घर आ गया है। मैं दायें मुड़ा, बायें मुड़ा, सीधा चला, टेढ़ा चला, अन्तमें नालीमें गिर गया। कपड़े भीग गये। कहीं प्रकाश नहीं दिख रहा था। फिर वापस मुख्य मार्गको लौटा। चलते-चलते एक क्वार्टरके पिछवाड़े गाय बँधी थी, उसे देखकर सोचा कोई सज्जन आदमीका घर होगा। यहाँ पूछ लूँ आगे गया और पुकारा—ओ भाई साहब! ओ बाबूजी, मैं रास्ता भूल गया हूँ, नगर भवन किस तरफ है, बताओ?

क्वार्टरमेंसे एक आदमी आता हुआ दिखायी दिया। पासमें गया तो देखा वह तो गाय नहीं एक जर्सी बँधी हुई थी। मैं भूलकर उन्हीं प्राचार्यजीके क्वार्टरके पीछे पहुँच गया था। इतनेमें प्राचार्यजी भीतरसे आये, मुझे देखकर बोले—अरे! आप धूम-फिरकर फिर आ गये, बड़े बेशर्म हैं। यहाँ रहनेको जगह नहीं है। कितनी बार कहूँ, आप जाइये। भीतरसे पत्नीने कहा—‘बूढ़े आदमी हैं, अँधेरेमें भूल गये होंगे। रातभर रोक दो, सुबह जल्दी चले जायेंगे।’ प्राचार्यजी बोले—‘अरे! तुम्हारा दिमाग खराब हो गया क्या? क्यों आफत मोल लेती हो बेकारमें। कौन चक्करमें पड़े, फिर कहेंगे भूखा हूँ। यह चाहिये, वह चाहिये। मैं किसीका नौकर नहीं हूँ, समझे। तुम अपना काम करो, मेरा मूँड खराब मत करो।’ बेचारी आज्ञाकारिणी धर्मपत्नी चुप रह गयीं।

मैं प्राचार्यजीकी गालियाँ खाकर वहाँसे लौटकर मुख्य रास्तेसे चलता-चलता उसी किसानके घरकी ओर बढ़ा। कुत्ते रास्ता रोक रहे थे। लोग पूछते कौन है, कौन है? मैं कहता—मैं हूँ परदेशी भूला-भटका। पेड़ोंकी छायामें अँधेरा और अधिक गहरा गया था। कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। मैंने किसानसे नामतक नहीं पूछा था। किसे पुकारूँ? पर अन्दाज है कि इन्हीं पेड़ोंकी झुरमुटकी ओर वह गया था। मैं साहस करके आगे चला। मेरे पदचाप सुनकर अचानक वह बोला—‘कौन? पण्डितजी!’ मेरी जानमें जान आयी, मैंने कहा—‘हाँ, मैं ही हूँ।’ वह दौड़कर आया। अपनी बाड़की टटिया खोली और कहा, अच्छा हुआ आप आ गये। शायद प्राचार्य साहब घरपर नहीं होंगे। आप प्रेमसे

यहीं रुकिये। मैंने तो तभी आग्रह किया था। भगवान्‌की कृपासे आपकी सेवा मिली। झोंपड़ीके भीतर जलती हुई आगको देखकर मैं प्रसन्न हो गया। नालीमें गिरनेसे कपड़े गीले हो गये थे। मैंने गीली धोती उतारकर गमछा पहन लिया और आगके पास बैठ गया। उसने आगके पास डेंगचीमें पानी रख दिया। कुछ गुनगुना हो गया तब बोला—आप गरम पानीसे हाथ-पाँव धो लें। तबतक मैं बाल्टी माँजकर आपके पीनेके लिये कुएँसे ताजा पानी लाता हूँ।

लम्बी झोंपड़ीमें एक ओर गाय बँधी थी। दूसरे कोनेमें बछड़ा। मुझे देखकर गाय खड़ी हो गयी और सरल-सरस नेत्रोंसे देखने लगी। इतनेमें वह वृद्ध आ गया। उसने बाल्टी रख दी और हाथ-पैर धोनेहेतु गरम पानी दिया। कहा मैं आपके पैर धो देता हूँ और आगे बढ़कर जबरदस्ती पैर धोने लगा। फिर अपने साफेसे पोंछने लगा। गीली धोती साफ कर दी। फिर आगमें और ईंधन लगा दिया। एक बोरा बिछा दिया। आग तापनेसे मेरी थकावट कुछ कम हो गयी। भूख तो खूब लगी थी, पर मैं इतना थक गया था कि अब विश्राम करना चाहता था। फिर वृद्ध किसानने कहा—महाराज! मैं धीवर हूँ, आप मेरा बनाया तो खायेंगे नहीं। मैं भी किसीका धर्म नहीं बिगाड़ा चाहता। सामान देता हूँ, आप यहीं आगपर खुद बना लें। मैंने कहा—नहीं, मैं बहुत थक गया हूँ। बस, विश्राम करूँगा, पर वह न माना। बोला मैं ब्राह्मण अतिथिको भूखा नहीं सोने दूँगा। उसने कुछ आलू, अरबी, शकरकन्दी आगमें दबा दिये। फिर कुछ मूँगफली लाया। बोला—महाराज! आजकी ही खोदी हुई हैं, ताजी हैं। होरा बनाकर खा लें। मैं अदरक, धनिया, मिर्च, नमक ला देता हूँ, चटनी बना लें। मैं आगपर भूनकर मूँगफली खाने लगा, बीच-बीचमें चटनीका स्वाद लेता। फिर वह कड़ाही और घीका डिब्बा लाया। गुड़ और बूरा लाया। उसने एक लौकीको छीलकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये। फिर बोला—महाराज! क्या आपने कभी लौकीका हलवा खाया है? बहुत अच्छा लगता है। कड़ाहीमें घी, जीरा

डाल दीजिये, बूरा डाल दीजिये। लौकीमें पानी तो होता ही है। तनिक देरमें बन जायगा। फिर उसने आगमें दबी आलू, अरबी और शकरकन्दी निकाली। उन्हें छीलकर बोला—इन्हें कुछ गुड़के साथ खायें कुछको कड़ाहीमें डालकर धीमें तलकर नमकीन बनाकर खायें। देखिये, लौकीका हलवा बन चुका है। इसी कड़ाहीमें धीमें तल लें। गायका धी है महाराज! तबतक मैं छानकर थोड़ा-सा आटा लाता हूँ। उससे गोबरकी कण्ठीपर अंगा बाटी बना लें। मैं उसके बोलनेकी तत्परता और कामकी व्यवस्थाकी व्यस्ततामें कुछ बोल ही नहीं पा रहा था। प्रेमभरा आग्रह टाल नहीं पा रहा था। थोड़ी ही देरमें सब व्यंजन तैयार हो गये। मैंने मन-ही-मन भगवान्को समर्पितकर खाना शुरू किया। अहा! कैसा स्वादिष्ट भोजन है। मैंने खूब डटकर खाया, फिर भी बचा रहा। तब उसने भी प्रसाद मानकर खाया। बड़ा सुख मिला। थोड़ी देरमें वह कम्बल लाया। उसे बिछा दिया और हँसकर बोला—ऊपर आप अपने कपड़े बिछा लें। आपके पास ओढ़नेको शॉल तो है। वैसे आमके पेड़ोंके कारण और आगके कारण यह मेरी झोंपड़ी गरम हो गयी है। अब आप लेट जायें। मैं लेट गया। अधिक थका हुआ था। थकावटके कारण कराहने लगा। उसे सुनकर वह आया और आकर मेरे पैर दबाने लगा। मैंने बहुत मना किया पर माना नहीं। वह बूझा था, पर इतनी जोरसे दबा रहा था कि थोड़ी देरमें थकावट दूर हो गयी। फिर बोला—मैं आपकी पीठ दबाता हूँ। तबतक आप कोई हरिचर्चा सुना दें। वह पीठ दबाने लगा। मैं राजा दिलीपकी गोभक्ति सुनाने लगा। मुझे ध्यान ही नहीं चला, मैं कब सो गया। सुबह कब हो गयी मुझे पता नहीं। मुझे झोंपड़ीके बाहर आमके पेड़ोंके नीचे लोगोंकी भीड़ दिखायी दी। घबराकर उठा। क्या हो गया—क्या हो गया? बाहर आया तो पता चला कि एस० डी० त्रिवेदीका लड़का बाहर क्रिकेटका मैच खेलने गया था। खेलकर लौट रहा था कि रास्तेमें सर्पने डस लिया। उसे रातको ही मोटरसे लाया गया। जहरसे उसका पूरा शरीर हरा-नीला पड़ गया। किसीने बताया है कि गनपत बाबा विष उतारते हैं। अतः यहाँ आये हैं। गनपत बाबा नीमका झोंका लेकर मन्त्र पढ़ रहे थे। वह पैर हिलाने लगा, पर ठीक होता दिखायी नहीं दिया।

इतनेमें किसी आदमीने कहा—मैंने सुना है कि भवानीपुराके एक उपाध्यायजी साँपके काटे स्थानको चीरकर जहर चूस लेते हैं और आदमी बच जाता है। चाहे जैसा विषेला सर्प हो। पर उनके पास जल्दी-से-जल्दी पहुँचना चाहिये। गनपत बाबाने कहा कि भवानीपुराके एक पण्डितजी तो हमारी झोंपड़ीमें ही रुके हुए हैं। उन्हें प्राचार्यजीके यहाँ रुकना था पर वे मिले नहीं, तब रातको मेरे पास आकर रुके। यह सुनते ही प्राचार्य एस० डी० त्रिवेदी तथा उनकी पत्नी—दोनों दौड़कर आये और आकर चरणोंमें मस्तक रखकर रोने लगे। आपका हमने बहुत अपमान किया। आपने अपना नाम भी बताया फिर भी हमने उपेक्षा की। वे चरणोंमें पड़कर बेटेके प्राणोंकी भीख माँगने लगे। बेचारी निर्दोष पत्नी; वह पतिके आगे हठ न कर सकी, पछता रही थी।

मैंने प्रत्यक्ष जगदम्बा गोमाताकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया, फिर जगदम्बा राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीको प्रणाम किया। फिर बाहर आया, साँपके काटे स्थानपर चीरा लगाया और विष खींचने लगा और बड़े यत्नसे सारा विष खींच लिया। थोड़ी देरमें बालकने आँखें खोल दीं। फिर मैंने उसे गायका धी पिलाया। बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया। सब लोगोंने मेरे विष चूसनेका चमत्कार देखा। बालक उठकर बैठ गया। प्राचार्यजी एवं उनकी धर्मपत्नीने रोते हुए मुझे प्रणामकर कहा—हम जीवनमें कभी आपका उपकार नहीं भूल सकते। प्राचार्यजी बोले—मैं अपनी नीचतापर शर्मिन्दा हूँ। माता-पिताने बालकको छातीसे लगा लिया। सब जनसमूह मेरी जय-जयकारकर प्रणाम करने लगे। सब लोग चले गये।

प्राचार्य त्रिवेदीजीने मुझसे घर चलनेका आग्रह किया। मैंने कहा—अभी मैं सोकर उठा हूँ। कोई नित्य नियम या भजन-पूजन नहीं किया है। पहले मैं उससे निवृत होऊँगा। आप पधारें, आपको विद्यालय जाना होगा। मुझे कोई बन्धन नहीं है। प्राचार्यजीकी पत्नी बोली—आप वहींपर

शौचादिसे निवृत्त होकर भजन-पूजन कर लें। पर मैंने कहा—यहाँ सुन्दर कुण्ठका ताजा पानी है, खुली जगह है। यहाँ सब प्रकारकी सुविधा है फिर मुझे आगेकी यात्रा करनी है। आप लोग जायँ। पत्नीका संकेत पाकर प्राचार्यजीने पुनः मुझसे घर चलनेका आग्रह किया और कहा मैं भी ब्राह्मण हूँ। आप मुझे सेवाका अवसर दें।

यह सुनकर मुझे कुछ रोष आ गया। मैंने कहा—आपको सेवाका अवसर दिया जा चुका है और मैंने आपकी भावभरी सेवाका आस्वादन भी कर लिया है। अब आप कृपा करें। मैं अधिक पढ़े-लिखे लोगोंकी सेवासे घबरा रहा हूँ। आप मेरे पुत्रका प्रणाम स्वीकार कर लीजिये। उसने आपको प्रणाम कहा है। तब आप मेरी बात सुननेको तैयार नहीं थे। सन्देश किसीका भी हो पहुँचा देना चाहिये। अब आप जाइये। भगवान्‌की कृपासे आपके पुत्रका पुनर्जन्म हुआ है। आप प्रसन्नतासे पधारें। प्राचार्य भाषण देनेमें नम्बर एक थे। पर आज उनका मुँह कुछ भी नहीं कह पा रहा था। शर्मसे झुका जा रहा था। उनका मेरे पास आकर प्रणाम करनेका साहस नहीं हो पा रहा था। अब वे बच्चेको लेकर घरके लिये चल दिये।

मैं शौचसे निवृत्त होकर लौटा तो किसानने हाथोंकी शुद्धि करायी, फिर मैं दातून करने लगा। वृद्धने बाल्टीमें ताजा पानी निकाला। मैंने स्नान किया। पुनः सूखे वस्त्र पहनकर तिलक-स्वरूपकर सन्ध्या की। फिर गीता और रामायणका पाठ करने लगा। इसी बीचमें वृद्धने गायका दूध ओंटा लिया था। मैंने पूजा-पाठ करके गायको प्रणामकर प्रदक्षिणा की। उसके गोमयकी मस्तकपर बिन्दी लगायी और कहा—मैया! मेरी तो तीर्थयात्रा पूरी हो गयी। मुझे तो राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो गया। किसानने कहा—महाराज! मैं आपकी बात समझा नहीं, मुझे खुलकर बतायें। मैंने कहा—मेरी बातपर विश्वास करें, ये तुम्हारी गोमाता ही राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरी हैं और तुम उनके सच्चे पुजारी हो। तुम्हारा गोबरसे लिपा-पुता घर तीर्थ है। तुम्हारी अतिथि-सेवा महायज्ञ है। तुम्हारे कल्याणमें कोई सन्देह

नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृतिका मूल गाय है। गव्य पदार्थोंके सेवनके कारण तुम सच्चे अर्थमें मानव हो। पाश्चात्य शिक्षा पाकर पढ़े-लिखे लोग अधिक स्वार्थी और चतुर चालाक हो गये हैं, पर वे किसी दूसरेको नहीं स्वयंको ही धोखा देकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं।

प्राचार्यजी घर जाकर बच्चेको घरपर छोड़कर पुनः लौट आये थे। वे इस पूरी चर्चाको सुन रहे थे। वे आत्मग्लानिसे भर गये। एक शब्द भी नहीं बोल सके। उनका सिर अब ऊपर नहीं उठ रहा था। वे कर्तव्यसे विमुख हो रहे थे। सब तरहसे असमर्थ देखकर अब उन्होंने मेरे चरण पकड़ लिये और कहा, बड़े लोग बच्चोंके अपराधोंपर ध्यान नहीं देते, मेरे अपराधको आप क्षमा कर दें और घर चलें।

मैंने कहा—आपके घर चलकर क्या करूँगा? मैं पूर्ण गोब्रती हूँ। गव्य पदार्थोंसे बना हुआ भोजन करता हूँ। पूजापाठ कर ही लिया है। प्राचार्यजीने कहा गाय तो हमारे घरपर भी है। आपने स्वयं रातको देखी तो थी। मैंने कहा वह गाय नहीं, जर्सी है। गायरूपधारी जहरीला पशु! उसीके दूधसे ही तो कैंसर, सन्धिवात, मधुमेह, हृदयाघात आदि पूरे देशमें महामारीकी तरह फैल गये हैं।

इतनेमें प्राचार्यजीने जेबमें हाथ डालते हुए कहा तब मैं आपकी कुछ सेवा कर दूँ? यह सुनकर मेरे नेत्र लाल हो गये। मैंने कहा आपकी औकात देख ली। आप जेबसे हाथ निकाल लें। मुझे पता है आपने भवानीपुरामें सागवानके नामपर आमका फर्नीचर खरीदकर पैसा खाया था। उसकी जाँचमें ही ईमानदार अधिकारीने आपका स्थानान्तरण कर दिया था। ब्राह्मणके नाते अधिक दण्ड नहीं दिया। मुझे आपकी पापकी कमाईमेंसे एक रुपया भी नहीं चाहिये। आपका ऐसा साहस कैसे हुआ?

तब वृद्ध किसानने आकर मेरे चरण पकड़ लिये और हाथ जोड़कर कहा—पण्डितजी! आप मेरे कहनेसे इनके घर चले जाइये। बेचारे इनके आँखोंमें आँसू झलक आये हैं। आप तो विद्वान् हैं, छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान न दें। अब प्राचार्यजी उठे और किसान बाबासे

कहा—आप मुझे अपनी गायका दूध, दही, घी दे दें। मैं उसीसे भोजन बनाकर पण्डितजीकी सेवा करूँगा।

क्रोधके आवेशमें मैंने आपको जो कुछ उलटा-सीधा कहा है, उसकी मैं क्षमा-याचना करता हूँ। मैं आपका आतिथ्य स्वीकार कर सकता हूँ, पर एक मेरी शर्त है, आप मानें तो। प्राचार्यजीने कहा—आपकी हर शर्त मैं स्वीकार करनेको तैयार हूँ, आप तो आज्ञा कीजिये और हमारे ऊपर कृपा करके आतिथ्य स्वीकार कीजिये।

मैंने कहा आप घरपर जर्सी नहीं गाय रखनेका संकल्प लें तो मैं आपके घर आ सकता हूँ। प्राचार्यजीने कहा—मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। उन्होंने हाथमें

जल लेकर तुरंत अपने घरपर देशी गाय रखनेका संकल्प ले लिया। तब मैं उनके घर गया, वहाँ गोव्रती प्रसाद पाया। प्राचार्यजीने हाथ जोड़कर कहा—अब मैं प्रसन्न हूँ। महापुरुष अपने हृदयमें कोई बात नहीं रखते। उनका क्रोध भी कल्याणकारक होता है। जब आप राजराजेश्वरीके दर्शनकर लौटकर आयेंगे तब मैं गायको आगे करके ही आपका स्वागत करूँगा। मैं प्राचार्यका सत्कार स्वीकारकर पैदल ही राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीके दर्शनको निकल पड़ा; क्योंकि मेरा संकल्प पैदलयात्रा करनेका ही था। भारतीय संस्कृतिकी मूल आतिथेयी गोमाताकी जय!

प्रेरक-प्रसंग—

## श्रमका फल

अब्राहम लिंकनका बचपन अत्यन्त दुःखमय था। उन्होंने अत्यन्त साधारण और गरीब परिवारमें जन्म लिया था। कभी नाच चलाकर तो कभी लकड़ी काटकर वे जीविका चलाते थे। उन्हें महापुरुषोंका जीवन-चरित पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था, पर अर्थाभावमें पुस्तक खरीदकर पढ़ना उनके लिये कठिन था।

वे अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटनके जीवनसे बहुत प्रभावित थे। एक समय उन्हें पता चला कि उनके पड़ोसीके पास जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित है; वे प्रसन्नतासे नाच उठे, पर मनमें भय था कि पड़ोसी पुस्तक देंगे या नहीं। पड़ोसीने पुस्तक दे दी। अब्राहमने शीघ्र ही लौटा देनेका वादा किया था।

अब्राहम लिंकनने पुस्तक समाप्त नहीं की थी कि एक दिन अचानक बड़े जोरकी जलवृष्टि हुई। अब्राहमलिंकन झोंपड़ीमें रहते थे; पुस्तक वर्षासे भीगकर खराब हो गयी। अब्राहमके मनमें बड़ा दुःख हुआ, पर वे निराश नहीं हुए।

x

x

x

x

‘मुझसे एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है।’ सोलह सालकी अवस्थावाले असहाय बालक अब्राहमकी बातसे पड़ोसी आश्चर्यचकित हो गये। वे बालककी सरलता और निष्कपटतासे बहुत प्रसन्न हुए।

अब्राहमने कहा कि मैं पुस्तक लौटा नहीं सकूँगा; क्योंकि वह जलवृष्टिसे भीगकर खराब हो गयी है तो भी मैं आपको नयी पुस्तक दूँगा।

‘तुम नयी किस तरह दे सकोगे? घरपर एक पैसेका भी ठिकाना नहीं है और बात ऐसी करते हो?’ पड़ोसीने झिड़की दी।

‘मुझे अपने श्रमपर विश्वास है। मैं आपके खेतमें मजदूरीकर पुस्तकके दूने दामका काम कर दूँगा।’ अब्राहम लिंकन आशान्वित थे। पड़ोसीको उनका प्रस्ताव ठीक लगा।

अब्राहम लिंकनने मजदूरीके द्वारा पुस्तकके दामकी भरपाई कर दी और जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी उन्हींकी सम्पत्ति हो गयी। इस प्रकार अपने श्रमसे उन्होंने अपने पुस्तकालयकी पहली पुस्तक प्राप्त की।

## व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, शरदऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदादिनमें ८। २४ बजेतक द्वितीया ” ८। ३५ बजेतक	बुध गुरु	रेवती रात्रिमें २। ३२ बजेतक अश्वनी ” २। ५७ बजेतक	२६ सित० २७ ”	मेषराशि रात्रिमें २। ३२ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें २। ३२ बजे, द्वितीयाश्राद्ध। भद्रा रात्रिमें ८। २४ बजेसे, तृतीयाश्राद्ध, हस्तका सूर्य रात्रिमें ३। १० बजे, मूल रात्रिमें २। ५७ बजेतक।
तृतीया ” ८। १३ बजेतक	शुक्र	भरणी ” २। ५४ बजेतक	२८ ”	भद्रा दिनमें ८। १३ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८। १० बजे, चतुर्थीश्राद्ध।
चतुर्थी प्रातः ७। २४ बजेतक पंचमी ” ६। ८ बजेतक	शनि रवि	कृतिका ” २। २४ बजेतक रोहिणी ” १। ३३ बजेतक	२९ ” ३० ”	वृषराशि दिनमें ८। ४७ बजेसे, पंचमीश्राद्ध। भद्रा रात्रिशेष ४। ३० बजेसे, षष्ठीश्राद्ध।
सप्तमी रात्रिमें १। ३२ बजेतक अष्टमी ” १२। २२ बजेतक	सोम मंगल	मृगशिरा ” १२। २३ बजेतक आद्रा ” १०। ५८ बजेतक	१ अक्टू० २ ”	भद्रा दिनमें ३। ३१ बजेतक, सप्तमीश्राद्ध। जीवत्युत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध, श्रीगाँधीजयन्ती।
नवमी ” १०। २ बजेतक दशमी ” ७। ३८ बजेतक	बुध गुरु	पुनर्वसु ” ९। २३ बजेतक पुष्य ” ७। ४४ बजेतक	३ ” ४ ”	कर्कराशि दिनमें ३। ४७ बजेसे, मातृनवमी, नवमीश्राद्ध। भद्रा दिनमें ८। ५० बजेसे रात्रिमें ७। ३८ बजेतक, दशमीश्राद्ध, मूल रात्रिमें ७। ४४ बजेसे।
एकादशी सायं ५। १२ बजेतक द्वादशी दिनमें २। ५२ बजेतक त्रयोदशी ” १२। ४३ बजेतक चतुर्दशी ” १०। ४७ बजेतक अमावस्या ” ९। १० बजेतक	शुक्र शनि रवि	आश्लेषा ” ६। ३ बजेतक मघा सायं ४। २९ बजेतक पू०फा० दिनमें ३। ४ बजेतक उ०फा० ” १। ५४ बजेतक हस्त ” १। ५ बजेतक	५ ” ६ ” ७ ” ८ ” ९ ”	सिंहराशि दिनमें ६। ३ बजेसे, इन्दिग एकादशीव्रत (सबका), एकादशीश्राद्ध। शनिप्रदोषव्रत, द्वादशीश्राद्ध, त्रयोदशीश्राद्ध, मूल समाप्त सायं ४। २९ बजे। भद्रा दिनमें १२। ४३ बजेसे रात्रिमें ११। ४४ बजेतक, चतुर्दशीश्राद्ध। अमावस्याश्राद्ध, पितृविसर्जन। तुलराशि रात्रिमें १२। ५० बजेसे, भौमवती अमावस्या, मातामहश्राद्ध।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, अश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ७। ५६ बजेतक द्वितीया ” ७। ८ बजेतक	बुध गुरु	चित्रा दिनमें १२। ३६ बजेतक स्वाती ” १२। ३३ बजेतक	१० अक्टू० ११ ”	शारदीय नवरात्रारम्भ, महाराजा अग्रसेनजयन्ती। चित्राका सूर्य दिनमें ३। ४० बजेसे।
तृतीया ” ६। ४९ बजेतक चतुर्थी ” ६। ५९ बजेतक	शुक्र	विशाखा ” १। ० बजेतक अनुराधा ” १। ५६ बजेतक ज्येष्ठा ” ३। २४ बजेतक	१२ ” १३ ” १४ ”	भद्रा रात्रिमें ६। ५४ बजेसे, वृश्चिकराशि प्रातः ६। ५३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत। भद्रा प्रातः ६। ५९ बजेतक, मूल दिनमें १। ५६ बजेसे। धनुराशि दिनमें ३। २४ बजेसे।
पंचमी ” ७। ४४ बजेतक	शनि	मूल सायं ५। १८ बजेतक	१५ ”	मूल सायं ५। १८ बजेतक।
षष्ठी दिनमें ८। ५४ बजेतक सप्तमी ” १०। ३१ बजेतक	सोम मंगल	पू० षा० रात्रिमें ७। ३३ बजेतक	१६ ”	भद्रा दिनमें १०। ३१ बजेसे रात्रिमें ११। २८ बजेतक, महानिशा पूजा, मकरराशि रात्रिमें २। ११ बजेसे।
अष्टमी ” १२। २७ बजेतक	बुध	उ०षा ” १०। ४ बजेतक	१७ ”	श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, दुर्गानवमीव्रत।
नवमी ” २। ३२ बजेतक दशमी सायं ४। ३९ बजेतक	गुरु	श्रवण ” १२। ४२ बजेतक	१८ ”	× × ×
एकादशी रात्रिमें ६। ३३ बजेतक द्वादशी ” ८। १० बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ” ३। १६ बजेतक	१९ ”	विजयादशमी, भद्रा रात्रिशेष ५। ३६ बजेसे, कुम्भराशि दिनमें १। ५९ बजेसे, पंचकाराम्भ दिनमें १। ५९ बजे।
त्रयोदशी ” ९। १२ बजेतक चतुर्दशी ” १०। ६ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिशेष ५। ३५ बजेतक	२० ”	भद्रा रात्रिमें ६। ३३ बजेतक, पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)।
पूर्णिमा” १०। १८ बजेतक	रवि	पू०भा० अहोरात्र	२१ ”	मीनराशि रात्रिमें १। ४ बजेसे।
सोम	पू०भा० प्रातः ७। ३५ बजेतक	उ०भा० दिनमें ९। १७ बजेतक	२२ ”	सोमप्रदोषव्रत।
मंगल	उ०भा० रेवती ” १०। ११ बजेतक	रेवती ” १०। ११ बजेतक	२४ ”	भद्रा रात्रिमें १०। ६ बजेसे।
बुध				भद्रा दिनमें १०। १२ बजेतक, मेषराशि दिनमें १०। ११ बजेसे, शरत्पूर्णिमा, महर्षिवाल्मीकि-जयन्ती, पंचक समाप्त दिनमें १०। ११ बजे।

# साधनोपयोगी पत्र

(१)

## श्रीगोपांगनाओंकी महत्ता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आप भगवान्‌के प्रेमी हैं और ब्रजदेवियोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हैं; अतः ब्रजांगनाओंके चरित्रिकी ऐसी कोई भी आलोचना, जो उन्हें तुच्छ सिद्ध करती हो, या उनके महत्त्वको घटाती हो, आपके हृदयको व्यथा ही देती होगी। आपने नारदभक्तिसूत्रका प्रमाण देकर जो यह बात सिद्ध की है कि गोपीजनोंको भगवान्‌के स्वरूपका पूर्णतः ज्ञान था, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो गोपियाँ भगवान्‌की अन्तरंग शक्तियाँ थीं, जिनके मन-प्राण सदा भगवान्‌में ही लगे रहते थे, वे उनके स्वरूप और महत्त्वको न जानती हों—यह कैसे सम्भव है।

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके २९ वें अध्यायमें श्रीशुकदेवजीने जो यह कहा कि—‘तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः। जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥’ फिर राजा परीक्षितने जो शंका की कि—‘कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।’ इत्यादि, तथा इस शंकाको स्वीकार करके जो शुकदेवजीने उत्तर दिया—‘उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः। द्विषत्रिपि हृषीकेशं किमुताथोक्षजप्रियाः॥’ यह सब ठीक है। इस प्रसंगसे गोपीजनोंकी महत्तापर ही प्रकाश पड़ता है। श्रीधर स्वामीने जो अपनी व्याख्यामें लिखा है कि—‘जीवेष्वावृतं ब्रह्मत्वं कृष्णस्य तु हृषीकेशत्वादनावृतमतो न तत्र बुद्ध्यपेक्षा।’ अर्थात् जीवोंका चेतनभाव या चित्स्वरूपता आवृत है, अतः उसको समझनेके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है; परंतु श्रीकृष्ण तो सबकी इन्द्रियोंके नियामक एवं अन्तर्यामी हैं, इसलिये उनका चिन्मय स्वरूप आवृत नहीं है। अतः उनके इस स्वरूपकी अनुभूतिके लिये या उनके चिन्तनसे होनेवाली मुक्तिकी सिद्धिके लिये ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है। इसके द्वारा श्रीकृष्णके अनावृत सच्चिदानन्दधनस्वरूपका प्रतिपादनमात्र किया गया है। इसका भाव यह नहीं है। समझना चाहिये कि गोपियोंकी उनके प्रति परमात्मबुद्धि नहीं थी, या वे उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानती

थीं, ‘अखिलदेहिनामन्तरात्मदृढ़्’ इत्यादि पदोंसे भी इस धारणाकी पुष्टि हो जाती है।

यह सब होनेपर भी भगवान्‌की स्वरूपभूत माया शक्ति या लीलाशक्ति उनके ज्ञानको तिरोहित तथा प्रेमभावको ही प्रायः जाग्रत् किये रहती है। श्रीकृष्ण परमात्मा या ब्रह्म हैं, इस भावका स्मरण उन्हें नहीं रहता; वे यही अनुभव करती हैं—श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, प्राणवल्लभ हैं। आपको ‘जारबुद्ध्यापि’ यह कहना खटक सकता है। ब्रह्माजी भी जिनकी चरणरजकी वन्दना करते हैं तथा उद्धव-जैसे ज्ञानी भी जिनकी चरणरेणु होनेके लिये तरसते हैं, उन ब्रजललनाओंकी भी सच्चरित्रताका समर्थन करना पड़े, उनके चरित्रपर भी सन्देहका अवसर आये—यह आपहीको नहीं, सभी भगवत्प्रेमियोंके व्यथा देता है। गोपियोंके प्रेमके साथ शिशुपालके भगवत्स्मरणकी चर्चा भी आपको पसंद नहीं आयी। परंतु ऐसा होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता। शिशुपाल तो भगवान्‌का परम अन्तरंग पार्षद था, वह शापग्रस्त होनेके कारण भगवान्‌से पृथक् पड़ा था, उसने द्वेषभावसे भगवान्‌का निरन्तर स्मरण किया था; अतः उसका महत्त्व कम नहीं मानना चाहिये।

आपके यहाँके विद्वान् जो यह कहते हैं कि ‘गोपियोंके मनमें काम ही था, प्रेम नहीं’ उनका यह कथन श्रीगोपीजनोंके महत्त्वको न जाननेके कारण ही है। उनके इस कथनका विरोध तो श्रीमद्भागवतमें ही हो जाता है। शास्त्रमें कहा है—‘प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्’—गोपियोंका प्रेम ही लोकमें कामके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गोपियाँ प्रेमकी प्रतिमूर्ति थीं। उनके मनमें लौकिक कामकी गत्थ भी नहीं थी। उनके लिये जो ‘जारबुद्ध्यापि’ इस पदका प्रयोग किया गया है, यह भी उनकी महत्ताका ही परिचायक है। जब उनमें लौकिक काम नहीं, अंगसंगकी वासना नहीं, तब वहाँ लौकिक जारभाव या औपपत्यकी कल्पना कैसे की जा सकती है?

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न श्रीकृष्ण और गोपियोंके स्वरूपको भुलाकर ही किया

जाता है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान—सबके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। गोपी-गोपियोंके पति, उनके सगे-सम्बन्धी तथा जगत्के सभी प्राणियोंके हृदयमें आत्मा एवं परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण किसीके पराये नहीं हैं। वे सबके अपने हैं और सब उनके हैं। श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दधन, सर्वान्तर्यामी, प्रेमरसस्वरूप एवं लीलारसमय परमात्मा हैं; तथा गोपियाँ उनकी आहादिनी शक्तिरूपा अनन्दचिन्मय-रसप्रतिभाविता स्वरूपभूता श्रीराधारानीकी ही अनेकानेक मूर्तियाँ हैं। अतः श्रीकृष्ण उनके लिये जार या परकीय नहीं, तथा वे भी श्रीकृष्णकी परकीया नहीं। वास्तवमें तो उनमें स्वकीया-परकीयाका कोई भेद था ही नहीं। वे सब श्रीकृष्णकी अभिन्न थीं और श्रीकृष्ण उनके अभिन्न थे। भगवान् स्वयं ही आस्वाद्य, आस्वादक, लीलाधाम तथा विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें प्रकट होकर अपने स्वरूपभूत अनन्तानन्तरसका समास्वादन करते तथा कराते रहते हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि गोपियाँ या श्रीकृष्णके सम्बन्धमें जारभाव या परकीयत्वकी कल्पना असंगत है। ऐसी दशामें ‘जारबुद्धि’ अथवा ‘औपपत्य’ आदि पदोंका क्या स्वारस्य है, यह विचारणीय प्रश्न है। इसके विषयमें निवेदन यह है कि गोपियाँ परकीया नहीं थीं, पर उनमें परकीयाभाव था। इसी दृष्टिसे श्रीकृष्णके प्रति उनके मनमें जारभाव था, वास्तवमें श्रीकृष्ण उनके अपने थे। परकीया होने और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। जार और जारभावमें भी यही अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्वकी होती हैं—  
 (१) अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, (२) मिलनकी उत्कण्ठा और (३) दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। गोपियाँ श्रीकृष्णकी परकीया थीं, या श्रीकृष्णको जारभावसे भजती थीं—इस कथनका इतना ही तात्पर्य है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करतीं, उनसे मिलनेकी उनके मनमें निरन्तर उत्कण्ठा जाग्रत् रहती और वे श्रीकृष्णमें दोष कभी नहीं देखती थीं। वे उनके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी ही दृष्टिसे देखा करती थीं। इसी भावको व्यक्त करनेके लिये ‘जारबुद्धि’ आदि पदोंका प्रयोग हुआ है। हमें गोपियोंके इस अहैतुक प्रेमका, जो केवल श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये था, निरन्तर स्मरण रखना चाहिये।

गोपीजनोंकी महिमा अनिर्वचनीय है; आपके आग्रहसे उनकी कुछ चर्चा हुई—जिससे मन, वाणी और लेखनी पवित्र हुई। इसके लिये हम आपके कृतज्ञ हैं। शेष सब श्रीहरिकी कृपा है।

(२)

## गोपीभावकी उपासना

आपका कृपापत्र मिला था। उत्तरमें देर हुई, इसके लिये क्षमा करें। आपको गोपीभावकी उपासना प्रिय है, सो बड़ी ही अच्छी बात है। परंतु सावधान रहियेगा, कहीं मनमें कामभावना, इन्द्रियसुखेच्छा न पैदा हो जाय। गोपीभाव ‘सर्वसमर्पण’ का भाव है। इसमें निज-सुखकी इच्छाका सर्वथा त्याग है। गोपीभावमें न तो लहँगा, साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है, न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथकी ही। गोपीभावकी प्राप्तिके लिये श्रीगोपीजनोंका ही अनुगमन करना होगा। ध्यान कीजिये—श्रीकृष्ण मचल रहे हैं और माँ यशोदा उन्हें माखन देकर मना रही हैं। श्रीकृष्ण कुंजमें पधार रहे हैं, श्रीमती राधिकाजी उनकी अगवानीकी तैयारीमें लगी हैं। गोपीभावमें खास बात है ‘रसकी अनुभूति।’ ‘श्रीकृष्ण ही मेरे एकमात्र प्राणनाथ हैं। वे ही परम प्रियतम हैं। उनके सिवा मेरा और कुछ भी नहीं है।’ इतना कह देनेमें ही रस नहीं मिलता। रसके लिये रसभरा हृदय चाहिये। वाणीसे बाह्य रसका भानमात्र होता है। एक पतिप्राणा पत्नी प्रेमभरे हृदयसे पतिको जब ‘प्राणनाथ’ और ‘प्रियतम’ कहती है, तब उसके हृदयमें यथार्थ ही यह भाव मूर्तिमान् रहता है। इसीसे उसे रसानुभूति होती है। इसीसे वह प्राणनाथके लिये अपने प्राणोंका उत्सर्ग करनेमें नहीं हिचकती या यों कहना चाहिये कि उसके प्राणोंपर असलमें पतिका ही अधिकार होता है। पतिको प्रियतम कहते समय उसके हृदयमें स्वाभाविक ही एक गुदगुदी होती है, आनन्दकी रस-लहरी छलकती है, इसी प्रकार भक्तका हृदय भगवान्को जब सचमुच अपना ‘प्राणनाथ’ और ‘प्रियतम’ मान लेता है, तभी वह गोपीभावकी प्राप्तिके योग्य होता है और ठीक पत्नीकी भाँति जब भगवान्को पतिरूपमें वरण कर लिया जाता है, तभी उन्हें ‘प्रियतम’ और ‘प्राणनाथ’ कहा जा सकता है। शेष प्रभुकृपा।

# कृपानुभूति

## श्रीरामायणके अखण्ड पाठका अमोघ फल

मंत्र महामनि बिषय व्याल के । मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥

मन्त्रोमें वह अमोघ शक्ति होती है कि वे भाग्यमें लिखे दुर्भाग्यको भी पलट देते हैं । प्रस्तुत घटना इसी तथ्यकी पुष्टि करती है । बात उस समयकी है, जब मैं २३ वर्षका अनुभवहीन, अपरिपक्व नवयुवक था । मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण करते ही मेरी नियुक्ति नगरपालिका पुस्तकालय एवं वाचनालयमें लाइब्रेरियनके पदपर हो गयी । प्रारम्भिक एक वर्षमें ही मेरे कामका प्रभाव मेरे अधिकारियों, सहकर्मियों एवं जनतापर अच्छा पड़ा । अतः लगभग एक-डेढ़ वर्ष बाद ही मेरे अनुरोधपर मुझे नगरपालिका पूर्व माध्यमिक विद्यालयमें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित कर दिया गया । यहाँ भी मेरे कार्यसे मेरे प्रधान अध्यापक, सहशिक्षक एवं छात्र सभी प्रसन्न थे और मेरी गणना अच्छे अध्यापकोंमें की जाती थी ।

परंतु अचानक ही क्या कुछ ऐसा हुआ, जिसकी मुझे जानकारी नहीं है, नगरपालिकाके उपाध्यक्ष, उनके पार्षद एवं अधिकारी मुझसे रुष्ट हो गये । अचानक ही समाचार मिला कि मुझे पदावनत करके प्राथमिक शालामें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित किये जानेके लिये नगरपालिका महासभामें प्रस्ताव प्रस्तुत किया जानेवाला है! समाचार मिलते ही मैं व्यथित होनेके साथ ही हतबुद्धि रह गया । मुझे सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाय! खुशामद एवं चापलूसी तो मुझे आती ही नहीं थी । अपने कामके प्रति ईमानदारी एवं निष्ठा ही मेरा स्वभाव था ।

अन्तमें निराश-हताश होकर यह विचार आया कि अब तो प्रभुकी शरणमें जानेके सिवाय कोई चारा नहीं है । वैसे मैं प्रतिदिन पूजा-उपासनाके उपरान्त श्रीरामायणका पाठ निष्ठापूर्वक किया करता था । अचानक न जाने किस प्रेरणासे यह निश्चय किया कि अपनी लज्जाके रक्षणके लिये ‘श्रीरामायण’ का अखण्ड पाठ किया जाय । वह शनिवारका दिन था, जबकि महासभामें मेरे विरुद्ध प्राथमिक

शालामें स्थानान्तरणका प्रस्ताव रखा जानेवाला था । अतः शनिवारको ही मैं प्रातःकाल छः बजे संकल्प लेकर श्रीरामायणके सम्पूर्ण अखण्ड पाठके लिये बैठ गया ।

दूसरा दिन रविवार था । प्रातः लगभग ६.३० बजे पाठ समाप्त करनेके उपरान्त पूर्णहुति हवन किया एवं प्रसाद हाथमें लेकर बैठकके दरवाजेके बाहर खड़ा हुआ ही था कि नगरपालिकाके लेखापाल (एकाउन्टेन्ट) मेरे सामनेवाली सड़कसे बड़े मठकी ओर जाते दिखायी दिये । दरवाजेके समीप मुझे खड़ा देखकर उन्होंने पूछा कि थवाईत कुछ मालूम है?… फिर कुछ पल चुप रहकर वे स्वयं बोले—हमारे बड़े बाबूको पदावनत कर दिया गया है । समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया । फिर उत्सुकतापूर्वक गिरे मनसे मैंने पूछा—और मेरे सम्बन्धमें महासभाकी बैठकमें क्या हुआ? उन्होंने कहा कुछ तो नहीं । कोई बात ही नहीं हुई । यह सुनते ही मेरे चेहरेपर प्रसन्नताकी रेखा दौड़ गयी । मन-ही-मन प्रभुकी इस अहैतुकी कृपापर गदगद होकर प्रभु-चरणोंमें सादर प्रणाम किया । मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह सब ‘श्रीरामायण’ के अखण्ड पाठका ही प्रतिफल था ।

अब तो प्रभु-चरणोंमें मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया । मैंने कई बार सुना था कि श्रीरामायणका सुन्दरकाण्ड मन्त्रस्वरूप है । लोग प्रायः इसका पुरश्चरण करके शीघ्र ही अपने अभीष्ट फलकी प्राप्ति कर लते हैं । सम्पुटके द्वारा शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त करनेके लिये मन्त्र प्रसिद्ध हैं—

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवद सो दसरथ अजिर बिहारी ॥  
दीन दयाल बिरिदि संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

परंतु मेरे पक्षमें तो बिना सम्पुटके ही प्रभुका अमोघ अनुग्रह मिल गया था, तब सम्पुट लगाकर विधिवत् पुरश्चरण करनेपर शीघ्र ही प्रभुका अनुग्रह मिलेगा और अभीष्टकी प्राप्ति होगी—इस ध्रुव सत्यमें भला क्या सन्देह है ।—नथूलाल थवाईत

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## सन्तकी परदुःखकातरता

यह मेरी आँखों देखी सत्य घटना है। बात सन् १९५४ ई० की है। मैं शिक्षकीय प्रशिक्षणहेतु नार्मल स्कूल सागरमें अध्ययनरत था। वहाँ मेरे एक अध्यापक थे, नाम था श्रीबाबूलाल खरे। परिश्रमी, ईमानदार एवं सेवाव्रती। परिवारमें उनकी पत्नी, दो बेटियाँ लीला और कृष्णा तथा एक बेटा था, जिसका नाम भगवती था।

भगवतीकी आयु लगभग सात या आठ वर्षकी थी। परिवारकी गाड़ी अच्छे ढंगसे चल रही थी। श्रीबाबूलालजी उस समय अपनी एम०ए० की परीक्षाकी तैयारीमें व्यस्त थे।

अप्रैलका महीना। एक दिन अचानक भगवतीको बुखार आ गया। तीन-चार दिन निकल गये, किंतु बुखार उतरनेका नाम ही नहीं ले रहा था। इसी बीच भगवतीकी पेशाब रुक गयी। वह बार-बार पानीकी माँग करता। पानी पीता, किंतु उसे पेशाब बिलकुल ही नहीं हो रही थी। परिणामतः उसका पेट एकदम फूलकर फटने-सा लगा। वह बेहोश हो गया।

स्थानीय शासकीय अस्पतालमें उसे भरती कर दिया गया। हम तीन-चार साथी बारी-बारीसे उसकी देखभाल करनेके लिये अस्पतालमें ही बने रहते। अस्पतालके डॉक्टरोंने उसके बचनेकी आशा छोड़ दी और हम लोगोंसे कहा कि इसे घर ले जाओ।

श्रीबाबूलालजीके साथ हम सब लोग उसे घर ले आये। बरामदेमें एक दरी बिछाकर लिटा दिया। वह अभी भी बेहोश था। अस्फुट शब्दोंमें बार-बार पानी माँगता था। पेशाब आना अभी भी बन्द था। उसकी अन्तिम साँस चल रही थी। हम सभी लोग पूरी तरह निराश थे। बाबूलालजीकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपक रहे थे। भगवतीकी माँ बेहाल होकर रो रही थी। सभी लोग निरुपाय थे। कब क्या हो जाय—इसका कोई ठिकाना नहीं था।

इसी बीच वहाँ पड़ोसकी एक बुढ़िया आयी, उसकी उम्र लगभग पचहत्तर वर्ष थी। भगवतीके सिरपर हाथ फेरते हुए उसने श्रीबाबूलालजीसे कहा—काय रे बाबूलाल,

तैने तो सबई डॉक्टरोंकी दवाई करा ली। अब एक काम और कर ले बेटा। शनीचरी मुहल्लेमें एक कुटियामें एक बाबा रहते हैं। तनिक उन्हें बुलाके और दिखा ले।

श्रीबाबूलालजीने मुझसे कहा—‘सनातन! जाकर देख लो कौन बाबाजी हैं। आ सकें तो लिवा लाओ।’ मैं दौड़ता-दौड़ता कुटियाका पता लगाकर उन सन्तके पास पहुँचा। उन्हें संक्षेपमें पूरी घटना सुनायी। बाबूलालजीके विषयमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वे साधु-सन्तोंको ढोंगी मानते हैं, परंतु उनमें बेटेकी हालत सुनते ही वे सन्त करुणासे भर गये और लपकते हुए तुरंत मेरे साथ श्रीबाबूलालजीके घर पहुँच गये। भगवतीके सिरपर हाथ फेरा। पेटको टटोला और उठकर खड़े हो गये। मुझसे कहा—चलो मेरे साथ। मैं उनके साथ पुनः उनकी कुटियामें पहुँचा। उन्होंने कोई जड़ी-बूटी मेरे हाथमें थमाते हुए कहा। इसे ले जाओ। थोड़ेसे दूधके साथ मिलाकर पीसकर उसे पिला दो। उसे पानी बिलकुल मत पिलाना। जब भी पानी माँगे तो बर्फका एक टुकड़ा उसके मुँहमें डालते जाना। ईश्वर चाहेगा तो वह जल्दी ही ठीक हो जायगा। सभी लोग उसके पास बैठकर ईश्वरका भजन करें। रोयें-गायें नहीं। चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

वहाँसे लौटकर मैंने दवा भगवतीकी माँको दी। सन्तने जो भी बातें कही थीं, उनकी जानकारी सभी लोगोंको दी। भगवतीको तुरंत दवा पीसकर पिलायी गयी। पाँच मिनटके बाद ही उसको पेशाब होना शुरू हो गया। अनेक बार पेशाब हुई। एक घण्टेके भीतर ही उसका पेट पूरी तरह सामान्य हो गया। उसको होश भी आ गया। तीन-चार घण्टेके बाद वह उठकर बैठ गया। हम सभी लोग ईश्वरके इस चमत्कारपर आश्चर्यचकित थे। जिसे बड़े-बड़े डॉक्टर ठीक नहीं कर सके थे, उसे उन सन्तकी दवा एवं उनके आशीर्वादने कुछ ही घण्टोंमें स्वस्थ कर दिया। धन्य हैं वे सन्त और धन्य है उनकी परदुःखकातरता।

श्रीबाबूलालजी अब दुनियाँमें नहीं हैं, किंतु भगवती आज भी स्वस्थ है। शासकीय नौकरीमें है।

(२)

## मेरे बापने नमक खाया था

‘मोडसिंह नौजवान है। आजकल बहुत बुरा पेशा करता है। हमीरमलके घरसे लोहेकी अलमारीमें रखे हुए मुकदमेके कागजातकी अटैची चुराकर या जबरदस्ती छीनकर ला देगा और पाँच हजार रुपये ले लेगा।’ इस शर्तपर वह हमीरमलके घर रात्रिके समय पहुँचा। कमरेके अन्दर बुसा। हमीरमल सोया हुआ था। मोडसिंहने आलमारी खोली, अटैची निकाली और उसे लेकर ज्यों ही वह बाहर निकलने लगा कि हमीरमलकी आँखें खुल गयीं और उसने झपटकर अटैची पकड़ ली। मोडसिंहने जोर लगाया, पर हमीरमल भी नौजवान था। मोडसिंहने जेबसे तेज छूरा निकाला और ज्यों ही छूरा चलानेवाला था कि उसकी दृष्टि दीवालपर टैंगे हमीरमलके पिता हजारीमलके छाया-चित्रपर पड़ी। सहसा छूरेवाला हाथ रुक गया और मोडसिंह बड़े गौरसे फोटोकी ओर आँखें गड़ाकर देखने लगा। कुछ ही क्षणों बाद उसने पूछा—‘यह चित्र किसका है?’ हमीरमलने कहा—‘मेरे स्वर्गीय पिता श्रीहजारीमलजीका है।’ मोडसिंहने कहा—‘लो, अपनी अटैची, मैं जाता हूँ।’ हमीरमलने पूछा—‘क्यों आये थे, क्यों अटैची निकाली, क्यों लिये जा रहे थे और अटैची पकड़नेपर क्यों तुमने मुझे मारनेको छूरा निकाला था तथा अब क्यों बिना ही कुछ किये-कराये लौटे जा रहे हो?’

मोडसिंहने कहा—‘किसी मुकदमेमें मुझको मत घसीटना। मैं बता रहा हूँ। मैं ठाकुर स्योदानसिंहजीका लड़का हूँ। आठवीं जमाततक पढ़ा हूँ। मेरे पिताजीसे शत्रुता रखनेवाले एक राजपूत अफसरके द्वारा चोरीके झूठे मुकदमेमें मैं फँसा दिया गया था और मुझे एक वर्षकी कैदकी सजा मिली! मेरा कोई पिछले पापका भोग था। कैदखानेसे छूटकर आनेपर कहीं कोई नौकरी नहीं मिली। मेरे पिताजीने सात वर्षतक इन सेठ हजारीमलजीके यहाँ पहरेदारकी नौकरी की थी। तबीयत खराब होनेसे वे नौकरी छोड़कर घर चले आये थे। आते समय सेठजीने तीन हजार रुपये इनामके दिये थे और मेरे पिताजीके माँगनेपर अपना एक फोटो दिया था, जो अबतक हमारे घरमें टँगा है। पिताजी नौकरी छोड़कर

आये थे, उस समय मैं दस वर्षका था। मैं तब कैदमें था। पीछेसे पिताजीका देहान्त हो गया। माताजीका देहान्त पहले ही हो चुका था। सेठजी हजारीमलजीके यहाँ नौकरी करने तथा फोटो इनाम पानेकी बात पिताजी बार-बार कृतज्ञताके साथ सुनाया करते थे। मुझे पता नहीं था कि सेठजीके कौन पुत्र हैं, कहाँ रहते हैं। मैं कामकी खोजमें जहाँ-तहाँ गया, पर काम न मिलनेसे आखिर पेटकी भूख मिटानेको चोरी, छोटी-मोटी डकैतीका पेशा करने लगा। अब आपके किसी शत्रुद्वारा भेजा हुआ अटैची चुराने आया था। अटैची ले जाकर उन्हें दे देनेपर वे मुझे पाँच हजार रुपये देंगे—यह तय हुआ था। मैं अटैची निकालकर लौट रहा था। आपने जागकर अटैची पकड़ ली। मैंने छूरा निकाला, मैं निश्चय ही छूरा मारकर अटैची ले जाता, पर भगवान्की कृपासे मेरी नजर फोटोपर चली गयी। मुझे पहचाना चेहरा मालूम हुआ। पूछनेपर आपने सेठजीका फोटो और अपनेको उनका पुत्र बतलाया। अब भला, मेरा छूरा कैसे चलता? जिसके बापने जिनके पिताश्री…के यहाँ सात वर्षोंतक रहकर सेवा की, जिनका लगातार नमक खाया। उनपर मैं छूरा चलानेका महापाप कैसे करता? भगवान् फोटो दिखाकर मुझे इस महापापसे बचा लिया। यह उनकी बड़ी कृपा हुई। आप मेरी ओरसे अब निश्चिन्त रहिये।…आपके शत्रु हैं, उनसे सावधान रहना चाहिये। मुझे आजकी घटनाको लेकर किसी मुकदमे-मामलेमें गवाह आदि मत बनाइयेगा। इतना ही निवेदन है।’

सेठ हमीरमल मोडसिंहकी नमकहलालीका यह जीता-जागता आदर्श देखकर चकित रह गया। हमीरमलने मोडसिंहको बड़े प्रेमसे बैठाया, जलपान कराया, तब बिदा किया। (इस घटनामें नाम बदलकर लिखे गये हैं, घटना पुरानी, पर सत्य है।) —सुमेरमल जैन

(३)

## त्याग-प्रधान भारतीय संस्कृतिकी सजीव मूर्ति

मैं साबरकांठाके एक गाँवमें घूम रहा था। सन्ध्याके समय एक बुद्धिया मेरे पास आयी। शरीरपर फटी साड़ी लिपटी थी। चेहरेपर सिकन पड़ी थी। दरिद्रताकी अवतार-सरीखी दीख पड़ती थीं वह बुद्धिया माई।

मुझे लगा, वह बहन मेरे पास कुछ माँगने आयी होगी। पर वह तो अपना सभी कुछ देने आयी थीं। उनकी बातोंसे मुझे यह पता लगा और मैं आश्चर्यचकित हो गया।

गदगद वाणीसे उन बहनने कहा—‘महाराज! मैं गरीब आदमी, मैं क्या दूँ।’

दो मिनट मैं कुछ नहीं बोला, वह भी नहीं बोलीं। मैं उनके सामने देखता रहा।

बहनने फिर कहा—‘आपको देनेलायक तो मेरे पास कुछ नहीं है। ये दस बकरियाँ हैं। इनमेंसे एक दूध देती बकरी दूँ तो आप ले लेंगे?’

मैंने कहा—‘क्यों नहीं? हम तो बकरीका दान भी स्वीकार करते हैं। पर मैं न तो यहाँ रहूँगा और न बकरी साथ ले जाऊँगा। अतः बकरी यहीं किसी योग्य आदमीको दे दूँगा। तुम बताओ, उसीको दे दूँ।’

कुछ देर विचार करके बुद्धिया माईने कहा—‘महाराज! हमारे गाँवमें एक भंगीका लड़का रहता है। अकेला है बेचारा, उसे दे दें तो…?’

मैंने उस भंगीके लड़केको बुलाया और उससे कहा—‘ये माँजी तुझे एक बकरी देती हैं, तू उसे पालेगा न?’

उसने खुशीसे स्वीकार किया। बकरी उसे दे दी गयी। उसके आनन्दका पार नहीं था।

दूसरे दिन भोजनके बाद मैं विश्राम कर रहा था कि वही बुद्धिया माई फिर आयीं, बोलीं—‘महाराज! मैं अकेली हूँ, पर मेरे घर दो हैं। एकमें मैं रहती हूँ और दूसरेमें बकरियोंको रखती हूँ। बकरी तो बाड़में ही रह सकती हैं, तो यह मेरा जो दूसरा घर है, इसे भी आप दानमें ले लें।’

कुछ देर तो मैं बुद्धियाकी ओर ताकता ही रह गया। दूसरेके लिये त्यागकी इस वृत्तिको देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिला। फिर मैंने उनसे कहा—‘माँजी! तुम्हारे गाँवमें कोई बिना घरका आदमी है?’

कुछ देर विचार करके बुद्धिया बोली—‘हाँ महाराज! एक रैबारी है, आप यदि उसे दे देंगे तो वह

बहुत प्रसन्न होगा।’

मैंने रैबारीको बुलवाया और उससे पूछा—‘तेरे पास घर है?’

‘नहीं है महाराज!’ उसने कहा।

‘तो बनाता क्यों नहीं?’

‘बनाऊँ तो सही, पर महाराज! कोई जमीन नहीं देता।’

‘ये बुद्धिया माई तुझे रहनेको घर दें तो तू ले लेगा?’

‘क्यों नहीं?’ उसने बहुत खुश होकर कहा।

‘पर घरको जरा मरम्मत करवाना होगा।’

‘यह तो मैं करवा लूँगा बापजी।’

‘परंतु देख, एक शर्त है। ये बुद्धिया माई जबतक जीती रहेंगी, तबतक तुझे इनकी सेवा करनी पड़ेगी।’ मैंने हँसते-हँसते कहा।

सेवा करनेकी बात सुनते ही पास बैठी हुई बुद्धिया माई तुरंत बोल उठीं—‘नहीं, नहीं, महाराज! मैं सेवा करानेके लिये इसको घर नहीं दे रही हूँ। इसके पास घर नहीं है और मेरे पास एक ज्यादा है, इसीसे दे रही हूँ। मुझे इससे सेवा नहीं करवानी है। मेरी तो आपसे इतनी विनती है कि इसे ऐसा कुछ लिख दीजिये कि मेरे मरनेके बाद इस घरको इससे कोई छीन न सके।’

बुद्धिया माईकी सच्ची दान-भावना और सरलताने मेरे हृदयपर गहरा असर किया। बुद्धिया माईके सामने मैंने दोनों हाथ जोड़े।

फिर तो नियमितरूपसे कागजात बनाकर रैबारीको बुद्धिया माईका घर दान कर दिया गया। बुद्धियाने रैबारीके कपालपर कुंकुमका टीका करके उसका घरमें प्रवेश कराया।

मैंने गाँव छोड़ा, उस समय उन बुद्धिया माईका झुर्रियाँ पड़ा हुआ चेहरा मेरी आँखोंके सामने तैर रहा था। मुझे ये बुद्धिया माई हजारों वर्ष पुरानी त्याग-प्रधान भारतीय संस्कृतिकी सजीव मूर्ति दीख रही थीं। (अखण्ड आनन्द) —रविशंकर महाराज

## मनन करने योग्य

### तर्पण और श्राद्ध

एक बार महाराज करन्धम महाकालका दर्शन करने गये। कालभीतिने जब करन्धमको देखा, तब उन्हें भगवान् शंकरका वचन स्मरण हो गया। उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादिके बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर उन्होंने महाकाल (कालभीति) -से पूछा—‘भगवन्! मेरे मनमें एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरोंको जल दिया जाता है, वह तो जलमें ही मिल जाता है; फिर वह पितरोंको कैसे प्राप्त होता है? यही बात श्राद्धके सम्बन्धमें भी है? पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितरलोग उन पिण्डादिका उपयोग करते हैं। साथ ही यह कहनेका साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरोंको किसी प्रकार मिलते ही नहीं; क्योंकि स्वजनमें देखा जाता है कि पितर मनुष्योंसे श्राद्ध आदिकी याचना करते हैं। देवताओंके चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अतः मेरा मन इस विषयमें मोहग्रस्त हो रहा है।’

महाकालने कहा—‘राजन्! देवता और पितरोंकी योनि ही इस प्रकारकी है कि दूरसे कही हुई बात, दूरसे किया हुआ पूजन-सत्कार, दूरसे की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातोंको वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण) -का बना होता है, दसवाँ जीव होता है; इसलिये उन्हें स्थूल उपभोगोंकी आवश्यकता नहीं होती।’

करन्धमने कहा, ‘यह बात तो तब मानी जाय, जब पितर लोग यहाँ भूलोकमें हों, परंतु जिन मृतक पितरोंके लिये यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरकमें चले जाते हैं। दूसरी बात, जो शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धनमें पड़कर नरकमें हैं, तब दूसरोंके लिये कुछ कैसे करेंगे!'

महाकालने कहा—‘ठीक है, किंतु देवता, असुर, यक्ष

आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये सात प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मोंके अधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। इन नित्य पितरोंके अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ताके पितरोंको, वे चाहे कहीं भी हों, तृप्त करते हैं।’

करन्धमने कहा, ‘महाराज! यह बात तो समझमें आ गयी; किंतु फिर भी एक सन्देह है—भूत-प्रेतादिके लिये जैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्र ही संक्षेपसे देवतादिके लिये भी क्यों नहीं दी जाती? देवता, पितर, अग्नि—इनको अलग-अलग नाम लेकर देनेमें बड़ा झांझट तथा विस्तारसे कष्ट भी होता है।’

महाकालने कहा—‘सभीके विभिन्न नियम हैं। घरके दरवाजेपर बैठनेवाले कुतेको जिस प्रकार खानेको दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्तिको भी दिया जाय? और क्या वह उस तरह दिये जानेपर स्वीकार करेगा? अतः जिस प्रकार भूतादिको दिया जाता है, उसी प्रकार देनेपर देवता उसे नहीं ग्रहण करते। बिना श्रद्धाके दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते। श्रद्धापूर्वक पवित्र पदार्थ भी बिना मन्त्रके वे स्वीकार नहीं करते।’

करन्धमने कहा—‘मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दान दिया जाता है, वह कुश, तिल और अक्षतके साथ क्यों दिया जाता है?’ महाकालने कहा—‘पहले भूमिपर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुरलोग बीचमें ही धुसकर ले लेते थे। देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते। आखिर उन्होंने ब्रह्माजीसे शिकायत की। ब्रह्माजीने कहा कि—पितरोंको दिये गये पदार्थोंके साथ तिल, जल, कुश एवं जो देवताओंको दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल) जल, कुशका प्रयोग हो। ऐसा करनेपर असुर इन्हें न ले सकेंगे। इसीलिये यह परिपाटी है।’ अन्तमें युगसम्बन्धी शंकाओंको भी दूरकर कृतकृत्य हो करन्धम लौट आये।

# कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[ २५ सितम्बरमे पितृपक्ष ( महालय ) आरम्भ हो रहा है। ]

**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [ सजिल्द ] ( कोड 592 )**—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ७० गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी।

**जीवच्छाद्ध-पद्धति ( कोड 1895 )**—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹ ७०

**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश [ ग्रन्थाकार ] ( कोड 1593 )**—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्घोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १४५

**गरुडपुराण-सारोद्धारा ( कोड 1416 )**—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ ४०

**गया-श्राद्ध-पद्धति ( कोड 1809 )**—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ३५

**त्रिपिण्डी श्राद्ध ( कोड 1928 )**—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ १६

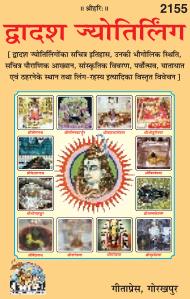
## महाभारत सटीकके अब सभी खण्ड उपलब्ध

कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹	कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹
32	प्रथम खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	35	चतुर्थ खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५
33	द्वितीय खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	36	पञ्चम खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	३७५
34	तृतीय खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	37	षष्ठ खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार—अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५

728 महाभारत-सटीक ( छ: खण्डोंका ) मूल्य ₹ २२५०

**साधन-सुधा-सिन्धु ( कोड 465 ) ग्रन्थाकार**—यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग ५० पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। पृष्ठ-संख्या १००८, कपड़ेकी मजबूत जिल्द एवं सुन्दर रंगीन, लेमिनेटेड आवरणसहित। मूल्य ₹ २००, ( कोड 1630 ) गुजराती और ( कोड 1473 ) ओडिआमें भी उपलब्ध।

## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



**द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग ( कोड 2155 ) [ पुस्तकाकार ]** — शिवभक्तोंके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इसमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र इतिहास, उनकी भौगोलिक स्थिति, सचित्र पौराणिक आख्यान, सांस्कृतिक विवरण, पर्वोत्सव, यातायात एवं ठहरनेके स्थान तथा लिङ्ग-रहस्य इत्यादिका विस्तृत विवेचन किया गया है। मूल्य ₹४०

**श्रीरामचरितमानस ( कोड 2166 ) सजिल्द, मोटा टाइप, अर्थसहित, ग्रन्थाकार,**

**सामान्य संस्करण**—प्रस्तुत ग्रंथ जन-सामान्यको ध्यानमें रखते हुए लागत मूल्यसे बहुत कम मूल्यपर प्रकाशित किया गया है, जिससे अधिक-से-अधिक पाठक श्रीरामचरितमानसके पाठका लाभ उठा सकें। कुल पृष्ठ-संख्या ८४८, मूल्य ₹१५०

**नल-दमयन्ती ( कोड 2150 ) असमिया**—इस पुस्तकमें महाभारतके आधारपर परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत नल-दमयन्तीके चरित्रिका मनोहर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹ ६

**ईशावास्योपनिषद् ( कोड 1844 ) मराठी**—उपनिषदोंमें ईशावास्योपनिषद्का सर्वप्रथम स्थान है। यह शुक्ल यजुःसंहिताके ज्ञानकाण्डका चालीसवाँ अध्याय है। सानुवाद, शाङ्करभाष्य। मूल्य ₹१०

**श्रीगुरुचरित्र ( कोड 2148 ) तेलुगु, [ ग्रन्थाकार ]**—प्रस्तुत पुस्तक ओवी छन्दोबद्ध मराठी मूलका विधेयात्मक तेलुगु भाषाका भावानुवाद है। पहली बार तेलुगु भाषामें श्रीगुरुचरित्र सुन्दर, सुबोध, सरल एवं सरस भावानुवाद प्रकाशित हुआ है। आशा है, तेलुगु भाषाके जिज्ञासुओंके लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा। मूल्य ₹२००

**श्रीमद्भगवद्गीता ( कोड 2162 ) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [ पॉकेट साइज ]**—इसमें मूल श्लोक-सहित नेपाली भाषामें श्लोकार्थ तथा गीताजीकी महिमा एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिका सरस वर्णन किया गया है। आशा है, नेपाली भाषाके पाठकोंके लिये यह अत्यन्त उपयोगी होगा। मूल्य ₹ १८

**सरल गीता ( कोड 2163 ) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [ पुस्तकाकार ]**—प्रस्तुत पुस्तकको गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये मूल श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी। प्रत्येक श्लोकके नीचे उसका नेपाली भाषामें अर्थ भी दिया गया है ताकि पाठकोंको श्लोकोंके पढ़ने और उसका भाव समझनेमें ज्यादा सरलता हो। मूल्य ₹ ३५

### गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित मार्च, २०१८ तकके विभिन्न संस्करण

१.	श्रीमद्भगवद्गीता	१३६५ लाख
२.	श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्य	१०४९ लाख
३.	पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थ	२४७ लाख
४.	महिलाओं एवं बालकोपयोगी साहित्य	१०८९ लाख
५.	भक्तचरित्र एवं भजनमाला	१५५३ लाख
६.	अन्य प्रकाशन	१३३७ लाख

कुल—६६ करोड़ ४० लाख

### शीघ्र प्रकाश्य—

**श्रीभक्तमाल ( कोड 2161 ) गुजराती,**

**ग्रन्थाकार**—भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। ( कोड 2066 ) हिन्दीमें भी उपलब्ध।